प्रभुवीर एवं उपसर्ग

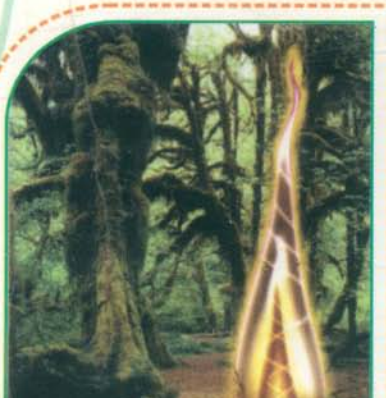

प्रवचनकार :
प्रसिद्ध प्रवचनकार पू.आ.श्री
विजय श्रेयांसप्रभसूरीश्वरजी म.

प्रभुवीर एवं उपसर्ग

प्रवचनकार :
प्रसिद्ध प्रवचनकार पू.आ.श्री
विजय श्रेयांसप्रभसूरीश्वरजी म.

प्रभुवीर एवं उपसर्ग

मुक्तिकिरण हिन्दी ग्रंथमाला-३

प्रकाशन वर्ष : २०६४, अषाढ शुक्ल-१०, शनिवार दि. १२ जुलाई ०८

प्रति : १०००

प्रवचनकार : प्रसिद्धप्रवचनकार पू.आ. श्री विजय श्रेयांसप्रभसूरिजी म. सा.

प्रकाशक : श्री स्मृतिमंदिर प्रकाशन, अहमदाबाद

मूल्य : ३५/-

प्राप्तिस्थान : **श्री स्मृतिमंदिर प्रकाशन ट्रस्ट**

पं. परेशभाई शाह

५०२, नालंदा एन्कलेव, सुदामा रिसोर्ट के सामने,

प्रितमनगर पहला ढोलाव, एलीसब्रीज, अहमदाबाद-६

फोन : (O) 26581521

दिनेशभाई ए. शाह

१२, स्वास्तिक एपार्टमेन्ट, शांतिनगर जैन देरासर के सामने,

उस्मानपुरा, अहमदाबाद.

श्री हसमुखभाई ए. शाह

इ-६७, हरिश्चन्द्र गोरणावकर रोड,

पार्वती निवास, शारदा मंदिर स्कूल के सामने,

गामदेवी, मुंबई-७

(M) 93222 32140 (R) 022-23645084

श्री राजेशभाई जे. शाह

बी/२५, शक्तिकृपा सोसायटी,

अरुणाचल रोड, डो. ब्रह्मभट्ट होस्पिटल के पीछे,

सुभानपुरा, बरोडा-२७

(M) 0265-2390516 (R) 022-23645084

मुद्रक : श्री स्मृतिमंदिर प्रकाशन, अहमदाबाद

प्रभुवीर एवं उपसर्ग

आभार.....

आभार.....

आभार.....

परमश्रद्धेय, सुविशाल गच्छाधिपति पू.आ.श्री विजय **हेमभूषणसूरीश्वरजी** महाराजा की स्मृतिको प्रगट करनेवाला भारत देश की राजधानी दिल्ही शहरमें प्रसिद्ध प्रवचनकार पू.आ श्री **विजय श्रेयांसप्रभसूरीश्वरजी** महाराजा आदि चातुर्मास आराधना हेतू भव्य स्वागत यात्रा निमीत्ते यह पुस्तक प्रकाशन का लाभ हमने लीया है।

मण्डार निवासी
संघवी रुगनाथमलजी समरथमलजी दोशी
परिवार -दिल्ही
पुत्र भँवरलाल, दिनेशकुमार
पौत्र मयूर, रोहित, श्रेयांस एवं प्रपौत्र पार्श्व

आपकी श्रुतभक्तिकी हम पुनः पुनः अनुमोदना करते है।

- श्री स्मृतिमंदिर प्रकाशन
अहमदाबाद.

यह है पावन भूमि, यहाँ बार बार आना
सूरिराम के चरणो में, आकर के झुक जाना

जैन शासन शिरताज

तपागच्छाधिराज पूज्यपाद आचार्यदेव

श्रीमद् विजय **रामचंद्रसूरीश्वरजी** महाराजा

हमारा हृदयोद्गार

हमारा
हृदय आनन्द और उल्लास से
नृत्य कर रहा है। हमारा अल्प प्रयास अनेकों
के जीवन का प्रकाश बन जाएगा, इसकी हमने
कल्पना भी कहाँ की थी ? 'मुक्तिकिरण' पाक्षिक
(गुजराती) का शुभारम्भ हुआ, तब से ही जैन-जैनेतर वर्ग की
ओर से तथा पूज्य श्रमण-श्रमणी भगवन्तों की ओर से मिलनेवाले
शुभ सन्देश हमारे उर्मियों को आनन्दित तथा उल्लसित कर रहा है।

जिसके कारण आज हम श्रुतसाहित्य के प्रकाशन में भी धीरे-धीरे कदम बढ़ाते जा रहे हैं। वि. सं. २०६३ में चन्दनबाला-वालकेश्वर में पू. आ. श्री विजयश्रेयांसप्रभसूरीश्वरजी महाराज की दस दिनों की स्थिरता हुई, उस समय प्रभु श्री महावीरदेव की छत्रछाया में 'प्रभुवीर अने उपसर्गो' नामक गुजराती प्रवचनमाला प्रारम्भ हुई, जिसमें प्रभु को जिस भव में समकित प्राप्त हुई, उस नयसार के भव से सत्ताईस भवों का संक्षिप्त वर्णन, प्रभु वीर का अन्तिम भव तथा उपसर्गों के समूह में ही 'संगम की एक रात्रि के बीस उपसर्ग' विशेष प्रकार से वर्णित किए गए। जो मुक्तिकिरण के गत वर्ष के चौबीस अंकों में प्रकाशित हो चूके हैं। उन्हें ही 'प्रभु वीर एवं उपसर्ग' के नाम से मुक्तिकिरण हीन्दी ग्रन्थमाला के अन्तर्गत प्रकाशित किया जा रहा है।

पूज्यों की कृपा तथा आपलोगों का सहयोग ही हमारी मूल सम्पत्ति है। श्री जिनाज्ञा के विरुद्ध या पूज्यश्री के आशय के विरुद्ध कुछ भी प्रकाशित हुआ हो, तो उसके लिए मिच्छामि दुक्कडम् -

राजेशभाई पादरावाले

पं. परेशभाई

प्रवचनकार का परिचय

परमाराध्यपाद परमगुरुदेव -परमोपास्य
श्री आत्म-कमल-वीर-दान-प्रेमसूरीश्वर-
पट्टधररत्न, गुणरत्नरत्नाकर, जैनशासनज्योतिर्धर
तपागच्छाधिपति, परमगुरुदेव आचार्यदेवेश श्रीमद्
विजय **रामचन्द्रसूरीश्वरजी** महाराजा के
पट्टप्रद्योतक, सिंहगर्जनाके स्वामी, आचार्यदेवेश श्रीमद्
विजय **मुक्तिचंद्रसूरीश्वरजी** महाराजा के
पट्टविभूषक, प्रशमरसपयोनिधि, आचार्यदेव श्रीमद्
विजय **जयकुंजरसूरीश्वरजी** महाराजा के
पट्टालंकार, प्रभावकप्रवचनकार, आचार्यदेव श्रीमद्
विजय **मुक्तिप्रभसूरीश्वरजी** महाराजा के
पट्टधररत्न, सूरिमंत्रपंचप्रस्थान समाराधक,
प्रसिद्ध प्रवचनकार, आचार्यदेव श्रीमद्
विजय **श्रेयांसप्रभसूरीश्वरजी** महाराजा

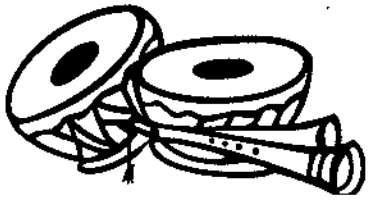

हमारा निवेदन

'जिनवाणी' ही भव्य जीवों की शरण है। श्री तीर्थंकरदेवों के द्वारा अर्थ रूप में प्ररूपित तथा श्री गणधरदेवों के द्वारा सूत्ररूप में गुम्फित यह वाणी श्री आगमशास्त्रों के माध्यम से और छोटे-बड़े शास्त्रग्रन्थों, चरित्रग्रन्थों व उपदेशग्रन्थों के द्वारा हमारे महापुरुष सरल व स्पष्ट भाषा में इस प्रकार पान कराते आए हैं, जैसे माता भोजन के कौर बनाकर बालक के मुँह में देती है।

जीवन के आठ-आठ वर्षों में प्रसरित पवित्रता के पुंज के समान और छियानवे वर्ष की वृद्धावस्था में भी एक युवक की भांति स्व-परोपकार में रत रहनेवाले जैनशासन के ज्योतिर्धर व्याख्यान वाचस्पति तपागच्छाधिपति पूज्य आचार्यदेवेश श्रीमद् विजयरामचन्द्रसूरीश्वरजी महाराजा बीसवीं और इक्कीसवीं सदी के सन्धिकाल में अपने अद्वितीय व्यक्तित्व के द्वारा धर्म का मर्म और मर्म का धर्म समझानेवाले विशिष्ट महापुरुष हुए। जिनके द्वारा बतलाए गए मार्ग पर चलकर प्रवचन के मर्म का प्रकाशन सरल, सचोट और सारगर्भित बना। जिससे अनेक समर्थधर्मदेशक जैनसंघ में मिले. ज्ञानी, ध्यानी, तपस्वी, संयमी, श्रमण-श्रमणी वर्ग और श्रद्धासम्पन्न श्रावकवर्ग तैयार हुआ। छप्पन वर्षों का आचार्यपद पर्याय और छियासी वर्ष का संयमपर्याय धारण करनेवाले इस महर्षि की चिरविदाई और अन्तिमयात्रा इतिहास में उल्लेखनीय रही। उनकी अन्तिम संस्कारभूमि 'ये है पावनभूमि, यहाँ बार-बार आना' के नाद से गूँज उठी। समस्त भारतवर्ष के भक्तवर्ग ने एक भव्य स्मृतिमन्दिर का निर्माण किया। जिसकी प्रतिष्ठा छत्तीसदिवसीय भव्य महोत्सवपूर्वक स्वर्गीय

परमगुरुदेवश्री के पट्टधररत्न समतासमाधिसाधक सुविशाल गच्छाधिपति पूज्य आचार्यदेव श्रीमद् विजयमहोदयसूरीश्वरजी महाराजा के वरदहस्त से वि. सं. २०५८ के माघ शुक्लपक्ष त्रयोदशी की शुभ घड़ी में सम्पन्न हुई। इस अवसर की स्मृति में सिंहगर्जना के स्वामी पू. आचार्य श्री विजयमुक्तिचन्द्र सूरीश्वरजी महाराजा के पट्टविभूषक प्रशमरस पयोनिधिपूर्वदेश तीर्थोद्धारक पू. आ. श्री विजयजयकुंजरसूरीश्वरजी महाराजा के सुविनीत पट्टालंकार तीर्थोद्धारक मार्गदर्शक पू. आ. श्री विजयमुक्तिप्रभसूरीश्वरजी महाराजा के विनीत विनेय पट्टधररत्न प्रसिद्ध प्रवचनकार सूरिमन्त्र संनिष्ठ समाराधक पू. आ. श्री विजय श्रेयांसप्रभसूरीश्वरजी महाराजा के मार्गदर्शन में हमने् स्मृतिमन्दिर प्रकाशन का उसी वर्ष प्रारम्भ किया। धीरे-धीरे कदम बढे। श्री अरिहन्त परमात्मा की परमकृपा, शासनदेवी की सहायता, ग़ाते हुए हमने आज प्रगति के मार्ग पर आगे बढ़ने का निश्चय किया हुरुदेवों की कृपादृष्टितथा पूज्यश्री का मार्गदर्शन हमारा सबसे बड़ा सहारा है।

लाडोल के जैनेतर महानुभावों की भावना को ध्यान में रखकर मुक्तिकिरण पाक्षिक का प्रारम्भ किया। हिन्दीभाषी महानुभावों की भावना से इस पाक्षिक का प्रकाशन अब हिन्दी में भी करने का निश्चय किया गया है। अनेक श्रुतभक्तों की भक्ति को ध्यान में रखकर पुस्तक प्रकाशन आदि कार्य में प्रयत्नशील हैं।

हमारी विविधयोजनाओं को सदा सहयोग मिलता रहा है, और हम आगे बढ़ते जा रहे हैं। पूज्य आचार्यदेव श्री विजयश्रेयांसप्रभसूरीश्वरजी महाराज और उनके शिष्य-प्रशिष्यों की ओर से सतत मार्गदर्शन मिलता रहा है और आगे भी मिलता रहेगा, यह हमारा आत्मविश्वास है। श्री जिनाज्ञाविरुद्ध या पूज्यश्री के आशयविरुद्ध कुछ भी प्रकाशित न हो, यह हमारा प्रयास है। फिर भी इस सम्बन्धमें आप भी हमारा ध्यानाकर्षण करते रहें, इस सहृदय निवेदन के साथ।

श्री स्मृतिमन्दिर प्रकाशन

अहमदाबाद

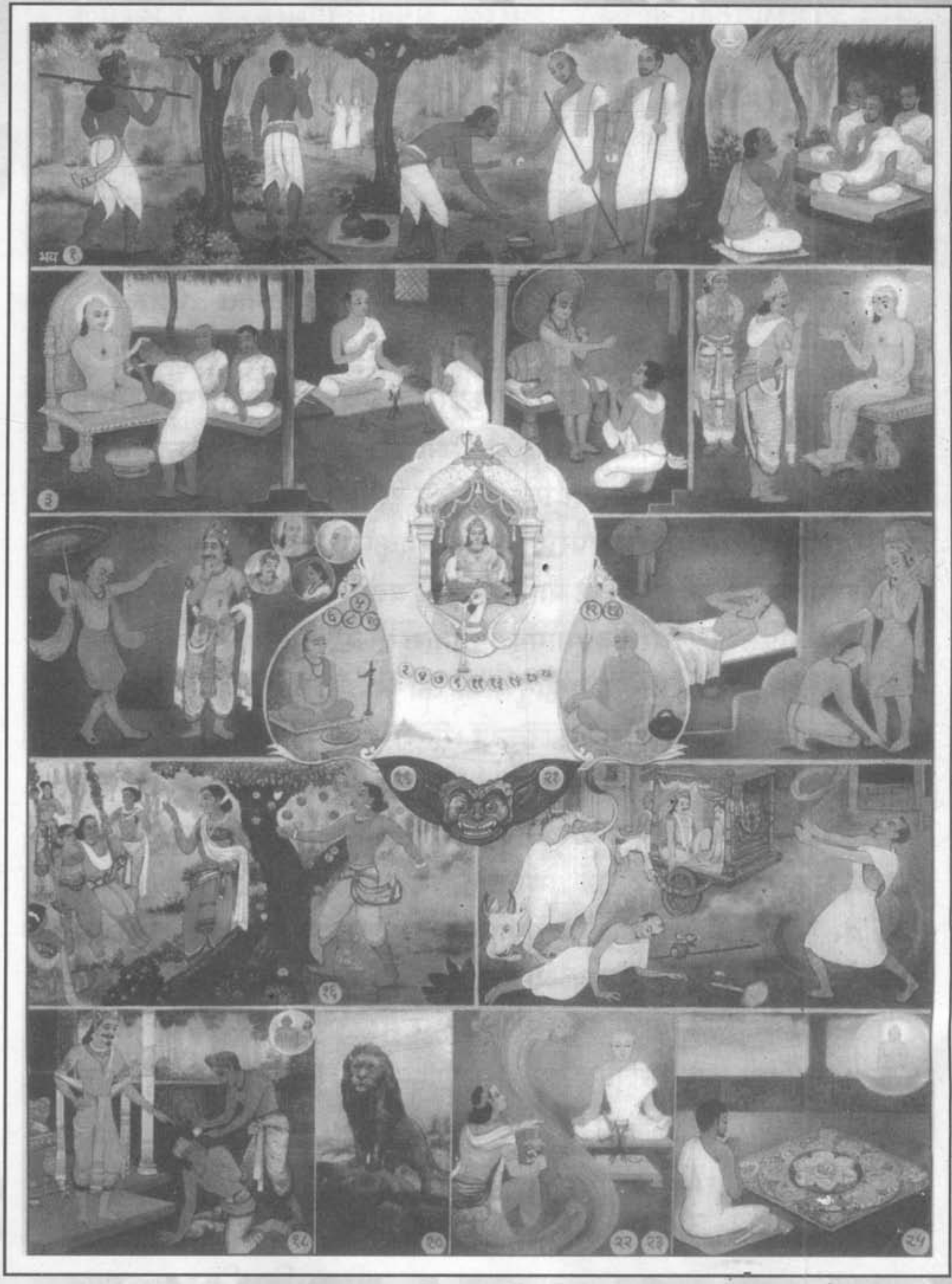

प्रभु महावीर के २६ भव

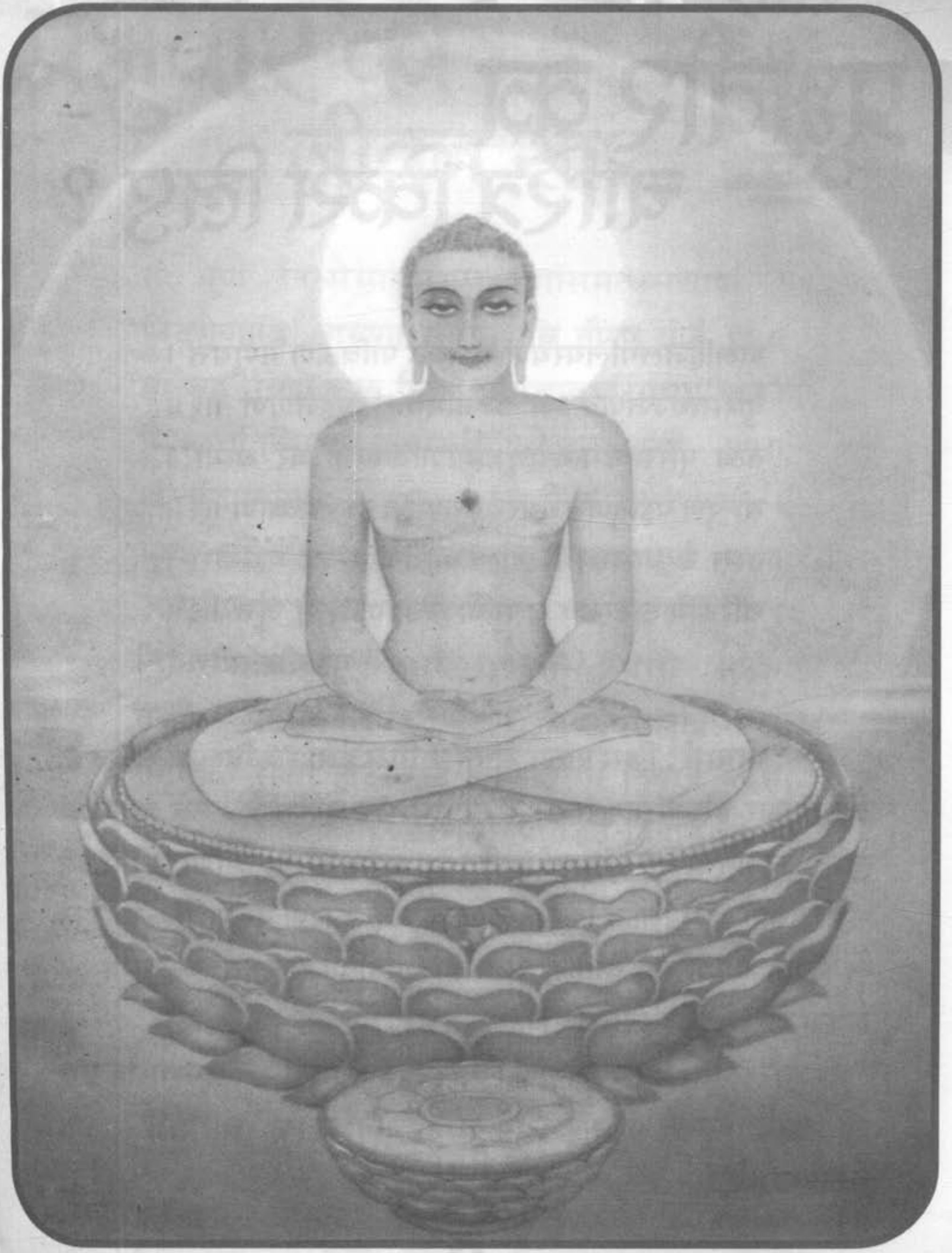

चरमतीर्थाधिपति
श्री महावीरस्वामीजी

प्रभुवीर का चारित्र किस लिए ?

जलहिजलगलियरयणं व दुल्लंहं पाविऊण मणुयत्तं ।
पुरिसत्थज्जणकज्जे उज्जमियव्वं बुहजणेणं ॥१॥
तत्थ पुरिसत्थमत्थयचूडामणिविब्भमो परं धम्मो ।
सो पुण पईदिणसच्चरियसवणओ हवईभव्वाणं ॥२॥
तस्स य धम्मस्स जिणो पणायगो संपयं महावीरो ।
चरियंपि उ तस्सेव य सुणिज्जमाणं तओ जुत्तं ॥३॥

- महावीर चरियम्

भावार्थ : जिस प्रकार समुद्र में गिरा हुआ रत्न मिलना कठिन है, उसी प्रकार इस संसार सागर में मनुष्य भव दुर्लभ है । उसे प्राप्त कर बुद्धिमान मनुष्य को पुरुषार्थ साधन हेतु प्रयत्न करना चाहिए, उसमें भी सभी पुरुषार्थों में सिद्धि दिलानेवाला होने के कारण पुरुषार्थों की मुकुट के समान धर्म करना चाहिए। भव्यजीव प्रतिदिन सत्पुरुषों के चरित्र का श्रवण करें, तभी वह सम्भव हो सकता है।

उस धर्म को कहनेवाले जिनेश्वरदेव हैं । वर्त्तमान धर्मशासन प्रभु श्री महावीरदेव ने प्रकाशित किया है, अत: उनका चरित्र ही सुनना युक्तिसंगत है।

प्रभुवीर का जीवन सार

तं पुण निस्सेसागमसमुद्दवणासमत्थसत्ताणं ।
निउणेणावि गुरुणा समग्गभवि तीरए वोतुं ॥१॥
ता जह भुवणेक्कगुरु निप्पडिमपभावधरियधम्मधुरो ।
मिच्छत्ततिमिरमुसुमूरणेक्कमिहिरो महावीरो ॥२॥
अच्चंतमणंतमणोरपार भववारिरासिमणवरयं ।
पुव्वं परियट्टिय तिरियतियसपुरिसाइभावेणं ॥३॥
ओसप्पिणी इमीए पढमं चिय गामचिंतगभवंमि ।
निसेससोक्खमूलं सम्मत्तणुत्तमं पत्तो ॥४॥
तत्तो पाविय देवत्त मुत्तमं भवहचक्कवट्टिस्स ।
मिरिइति सुओ होउं काउं जिणदेसियं दिक्खं ॥५॥
दुस्सहपरिसहनिम्महियमाणसो पयडिउं तिदंडिवयं ।
मिंच्छत्तविलुत्तमई कविलस्स कुदेसणं काउं ॥६॥
तह्नोसणं अयराण वड्डिउं कोडकोडिसंसारं ।
छब्भवगणे पुणरवि पारिवज्जं पवज्जिता ॥७॥
दीहं संसारं हिंडिऊण रायग्गिहंमि रायसुओ ।
होऊण विस्सभूई घोरं संजममणुचरित्ता ॥८॥
मरणे नियाणबंधं निव्वत्तिय सुरसुहं च भोत्तुणं ।
पोयणपुरे तिविट्ठु परिपालिय वासुदेवत्तं ॥९॥
मूयाए पियमित्तो चक्कित्तं संजमं च अणुचरिउं ।
छत्तग्गाए नंदण नरनाहत्तं च पव्वज्जं ॥१०॥

परिपालिय वीसईकारणेहिं तित्थाहिवत्तमज्जिणिउं ।
पाणयकप्पा चविउं कुंडग्गामंमि नयरंमि ॥११॥
सिद्धत्थरायपुत्तो होउं जंतूणमुद्धरणहेउं ।
सव्वविरइं पवज्जिय दुव्विसहपरीसहे सहिउं ॥१२॥
केवललच्छि लहिउं संपत्तो मोक्खसोक्खमक्खंडं ।
अट्ठहिं पत्थावेहिं सिद्धंताओ तह कहेमि ॥१३॥

– महावीर चरियम्

भावार्थ : समस्त आगम शास्त्रों का श्रवण करने में असमर्थ भव्यजीवों को बुद्धिनिधान गुरु भी प्रभु वीर का सम्पूर्ण जीवन कैसे कह सकते हैं ? अतः अप्रतिम प्रभाव से धर्मरूपी धुरी को धारण करनेवाले त्रिलोकगुरु प्रभुवीर पहले चतुर्गति संसार में भ्रमण कर प्रगाढ़ मिथ्यात्व के पर्वत को भेदकर समस्त सुखों के मूलरूप श्रेष्ठ सम्यक्त्व को ग्रामचिन्तक नयसार के भव में जिस प्रकार प्राप्त किया, उसके बाद देवत्व को प्राप्त कर चक्रवर्त्ती भरत के पुत्र के रूप में मरीचि के भव में प्रभुशासन की दीक्षा प्राप्त की, वहां के कर्मों के कारण दुःसाध्य परिषहों से भग्न हृदयवाला बनकर जिस प्रकार त्रिदंडकत्व को प्रकाशित किया, मिथ्यात्व के उदय से कपिल को देशना देकर कोडाकोडी सागरप्रमाण संसार वृद्धि की । छः-छः भवों में परिव्राजकत्व प्राप्त किया, दीर्घ संसार का परिभ्रमण कर राजगृही में विश्वभूति राजकुमार बने, कठोर चिरित्र का पालन किया । अन्त में नियाणा कर देवत्व को प्राप्त किया और अन्त में वासुदेव हुए । मूकापुरी में प्रियमित्र चक्रवर्त्ती के भव में श्रेष्ठ संयम का पालन किया । छत्रिकानगरी में नंदन राजा और नंदन राजर्षि बने । बीस स्थानक की विशिष्ट आराधना कर तीर्थंकर नामकर्म का उपार्जन-निकाचन किया । दसवें प्राणत देलोक से च्यवन कर क्षत्रियकुंडगाम नगर में त्रिशलादेवी के पुत्र सिद्धार्थ के रूप में अवतरित हुए । सर्वविरति को प्राप्त कर दुःसाध्य परिषहों तथा उपसर्गों के समूह को पराजित कर केवलज्ञान प्राप्त किया । शासन की स्थापना की और सर्व कर्मों का क्षय कर निर्वाणपद को प्राप्त किया । ये सारी बातें यहाँ (महावीर चरित्र) में आठ प्रस्तावों में वर्णित है ।

प्रभुवीर एवं उपसर्ग

श्री वीतराग देवों के जीवन-चरित्र बड़े से बड़े मलिन भावों को दहन करनेवाले होते हैं। प्रभु महावीर देव की जीवनकथा आरोह-अवरोह द्वारा खुब ही रोमांचक है। पूर्वभवों के भाव भी भावविभोर बना दे ऐसा है। अंतिम भव का आदर्श तो आदरणीय है। उसमें भी दीक्षास्वीकृति दिन से साढे बारह वर्ष की साधना को वर्णन करने के लिए शब्द कम पड रहे है। परिषह-उपसर्गों का पारायण पामर को भी परम बना दें ऐसा है। तो फिर एक रात्रि में संगम देव के द्वारा किया हुआ तूफान अस्थिसंधियों को गला दे ऐसा है, सभी परिस्थितियों में बिल्कुल अडोल श्री महावीर प्रभु की यशोगाथा संक्षेप में जानने का लाभ उठाने हेतु हम सब के लिये यह अवसर अनमोल है

अनन्तोपकारी, अनन्तज्ञानी भगवान् श्री अरिहंत परमात्माओं के समान कोई उपकारी हुए नहीं हैं, होनेवाले भी नहीं, परमात्मा श्री अरिहंतदेव अनन्य उपकारी है। कारण कि जीवों को जब अपना खुद का भी होश नहीं होता, तब जीवमात्र के लिये सच्चे कल्याण की कामना के बल से ही वे भगवद्भाव को दिलानेवाला तीर्थंकर नामकर्म का उपार्जन करते हैं, जो परमतारक परमात्मा के तारक धर्मशासन का योग हमे प्राप्त हुआ है। ऐसे श्रमण भगवंत महावीर प्रभु हमारे लिये आसन्नोपकारी है। पूर्व के अरीहंत भगवंतों के समान ही देवाधिदेव हैं। विश्व के सब प्रकार के देव परमात्मा की समानता तो कर सकते नहीं बल्कि उनके चरणरज बनने के लायक भी उनमें गुण नहीं होते। प्रभु के सच्चे सेवक बनने के लिए भी निर्मल सम्यग् दर्शन नामक आत्मगुण अपने में लाना पडता है

। फिर भी मिथ्यात्व की मंद अवस्था होनी आवश्यक है। उसके बिना प्रभु भक्ति का भी सच्चे अर्थ में परिणमन नहीं होता, प्रभु की पहचान भी होती नहीं है। सामान्यतः किसी की भी पहचान के लिए दो साधन होते हैं। (१) उनकी आकृति व (२) उनका चरित्र, परमात्मा की साक्षात् आकृति की विशेषताएँ तो शब्दातीत हैं, लेकिन उनकी प्रतिमाएँ भी वीतरागता की प्रतीति करावें ऐसी हैं। सर्वदोषरहित और सर्वगुणसम्पन्न प्रभु की पहचान के लिए उनकी मूर्तियों का दर्शन एक महत्वपूर्ण उपाय है।

प्रभुमय बनानेवाला जीवन

ठीक इसी प्रकार, वे सम्यक्त्व पाते हैं तब से वीतरागता पर्यन्त की अद्‌भुत जीवन कथा किसी भी अपरिचित-विचारक मनुष्य को प्रभुमय बना दे ऐसी है। काशी-बनारस के विश्वविद्यालय (युनिवर्सिटी) में षड्दर्शन के एक विद्वान प्रोफेसर व्याख्यान (लेक्चर) दे रहे थे। प्रसंगवश इन्होंने ऐसा बताया कि "भगवान श्रीरामचंद्रजी जब वनवास में थे तब जंगल मे एक झोपड़ी बनाकर रह रहे थे, महासती सीतादेवी झोपड़ी के बाहर साफ-सफाई कर रही थी, तभी उडता हुआ एक कौआ महादेवी सीता को चोंच मारने लगा। यह देखकर श्रीरामचंद्रजीने शीघ्र ही धनुष पर बाण चढाया। जब कि जैनों के भगवान श्रीमहावीर प्रभु ने अपने शरीर पर टूट पड़े हुए उपसर्गों को सहन करते हुए तथा कष्ट देनेवालों के प्रति नेत्र की पुतली खोलकर देखा तक नहीं। ये थी महावीरप्रभु की जीवों के प्रति क्षमाभावना!" यहाँ उस प्रोफेसर के वक्तव्य से क्या स्पष्ट होता है? प्रभु की जीवनकथा यह कथा नहीं, अपितु एक उच्चतम आदर्श है।

राग-द्वेषके विजेता

भगवान ऋषभदेवजी जब युवावस्था में पहुँचे तब खुद का कल्प समझनेवाले इन्द्र महाराजा ने विवाह प्रसंग की तैयारी के साथ प्रभुके पास आकर हाथ जोड़कर विनती की, 'प्रभो ! आपका विवाह का विधान करना यह मेरा आचार है। आपश्री मुझे इस हेतु आदेश दे,' तब कलिकालसर्वज्ञश्री ने इस प्रसंग को नोट किया है कि यह सुनकर प्रभु का मुख मुरझा गया और विचारने लगे कि 'हमारे जैसे जगदुद्धारकको भी नीच कर्मों के नाश के लिए नीच उपाय का सेवन करना पड़ेगा?' ये सभी प्रसंग वीतराग देवों की छद्मस्थ अवस्था में भी राग-द्वेष पर विजय की साक्षी देता है। अतः प्रभु के स्वरुप को पहचानने के

लिए प्रभु का जीवन एक श्रेष्ठ साधन है। यहाँ हम सभी प्रभु महावीरदेव की छत्रछाया में बैठे हुए हैं और प्रभुवीर के धर्मशासन में साधु-साध्वी, श्रावक-श्राविका के रूप में स्थान पाये हैं। इसलिये प्रभु महावीर के चरित्र को पढ़ने का विचार किया है।

प्रभुवीर महावीर कैसे हुए उसे जानने के लिए पहले उनके पूर्वभवों को संक्षेप में देखना है। अंतिम भव की थोडी सी बात लेकर संगमदेव के द्वारा एक रात्री में किये गये वीस उपसर्गों का वृत्तान्त मुख्यतया वर्णन करने की इच्छा बतायी है उसे आप सभी जानते ही हैं।

सम्यक्त्व की प्राप्ति

अनादि-अनंतकाल से अनंतानन्त आत्माएँ कर्म की गुलामी के कारण जन्म-मरणरूप संसार में संसरण(विचरण) कर रही है। उसी तरह श्री तीर्थंकरदेव की आत्माओं को भी कर्मवश ऐसी ही दशा होती है। अनादि निगोद में अनंतपुद्गलपरावर्त जितना सुदीर्घ-गणनातीत काल उस तारकों की आत्माओं ने भी गुजारी है। भवितव्यता के योग से दूसरी आत्माओं की तरह ही तारकों की आत्माएँ भी निगोद से बाहर आती है। व्यवहाराशिमें भी दीर्घकाल का परिभ्रमण विषय-कषाय के विपाक रुप में करना पडता है। काल, बल और पुण्य के प्रभाव से सुन्दर सामग्री पाकर भव्यत्व का परिपाक प्राप्त करके उन तारकों की आत्माएँ कर्मलघुता से मिथ्यात्व की मंदता पाती है। जिसमें से सम्यकत्व की भूमिका रची जाती है। इसी प्रकार समवायि कारणों के रू प में ख्यात पांच कारण मुख्य-गौण भाव से कार्य करते हैं। फिर भी सद्गुरु आदि के शुभ निमित्तों से अपनी आत्मद्रव्य की विशिष्ट योग्यता को विकसितकर, उन तारकों की आत्माएँ निर्मल सम्यग्दर्शन को धारण करनेवाली बनती है।

समकीत मिलते ही संसार मुट्ठी में

तारक श्री तीर्थंकरदेव की आत्माओं का आत्मद्रव्य ही विशिष्ट प्रकार का होता है। इसी से श्रीललितविस्तरा आदि शास्त्र ग्रंथों में 'आकालमेते हि परार्थव्यसनिन:' आदि द्वारा उनकी आत्माओं को जगद्वर्ती दूसरी आत्माओं की अपेक्षा विशेष प्रकार की गणना की गयी है। परोपकार आदि विशिष्ट गुण उनकी आत्माओं में मानो छीपे हुए रहते है। समय व संयोग मिलने पर तथा मिथ्यात्वादि दुष्ट भावों की लघुता होने पर वे विशिष्ट गुण प्रकट होने लगते हैं।

इसके बाद सर्वतोमुखी विकास द्वारा उनकी गुणसमृद्धि का आविर्भाव होने लगता है। वे तारक सद्गुरु आदि निमित्तों से मिलते रहते हैं, फिर भी उनकी विशेषताएँ ही उसमें प्रधान घटक होती है, अर्थात् अपने आत्मीय योग्यता के द्वारा ही पानेवाले उन तारकों को बोधिभी वरबोधिकहा जाता है। सम्यक्त्व जब तक प्राप्त नहीं होता है तब तक श्रीअरिहंत की आत्मा के भवों की गणना होती नहीं हैं, आपलोगने सुना हैं न-

'समकीत पामे जीवने, भवगणतीए गणाय,
जो पण संसारे भमे, तो पण मुगते जाय।'

एक बार जीव सम्यक्त्व पा लेता है फिर उसके लिये संसार मुट्ठी में गिना जाता है। अर्धपुद्गलपरावर्त की अपेक्षा भी कम समय में जीव मोक्ष प्राप्त कर लेता है।

अंतोमुहुत्तमित्तंपि फासियं हुज्ज जेहिं समत्तं।
तेसिं अवड्ढपुद्गल परियट्टो चेव संसारो ॥१॥

ऐसा कहकर इसी बात को शास्त्र ने दोहराया है।

भगवान श्री अरिहंत देव की आत्माएँ भी समकीत पाती हैं इसके बाद भवों की गणना शुरु होती है। श्रीऋषभदेवजी का १३ भव, श्रीशांतिनाथजीना का १२ भव, श्रीपार्श्वनाथजी का १० भव और श्री महावीरदेव का २७ भव क्यों ? जब से हमारी आत्मा है तब से उनकी भी आत्मा है, अतः अपने संसार की भाँति ही उनके भी संसार होते हैं न? लेकिन इन भवों की गिनती सम्यक्त्व प्राप्ति से है। समकीत पाने के बाद जीव की दशा बदल जाती है, अर्थ-काम की ओर एवं विषय-कषाय की ओर दौड़ता हुआ मन समकीत प्राप्त होते ही उससे पराङ्मुख हो जाता है। अब आत्मा को अर्थ काम अनर्थकारी और विषय कषाय बंधनरू प लगता है। इससे संसार मुट्ठी में आ जाता है, सामान्यतया सम्यग्दृष्टियुक्त आत्माओं की ऐसी स्थिति होती है तो तारक श्री तीर्थंकरदेवों की आत्मा की बात ही क्या करनी?

प्रेरक घटना एवं प्रतिज्ञा

हम सभी ने भगवान महावीर के जीवन को जानने का निर्णय किया है, वे तारक महावीर किस तरह बनें इसे जाननेके लिए पूर्वभव से समकितप्राप्ति पर्यन्त की बात बताने का विचार किया है। पश्चिम महाविदेह क्षेत्र में नयसार नामक भव में एक गाँव में ठाकुर के रू प में रहे, वे जिस तरह समकित पाए वह

घटना अत्यन्त ही प्रेरणाप्रद है। जिनका भावि कल्याणप्रद होते हैं, उनके सभी तरह के संयोग सहज ही अनुकूल हो जाते हैं। संस्कार का आधान बाल्यकाल से ही भलीभाँति विकसित होने लगता है। नयसार की माता उसे बाल्यकाल से ही कहती थी कि- बेटा विवेक सभी गुणों का मूल है। विवेक बिना सभी गुण धूल है। प्रभु के चरित्र में उनके लिये अद्भुत शब्द बताये गये हैं।

जो य तहाविहसाहुसेवाविरहेऽवि अलसो अकज्जपवित्तीए, परम्मुहो परपीडाए, सयण्हो गुणगणोवज्जणाए अचक्खू परच्छिद्दपलोयणआए। एवंविहगुणो य सो सविसेस गुणुक्करिससाहणनिमित्तं भणिओ गुरुअणेणजहा-

धणरिद्धी दूरं वड्ढियावि दुव्विणयपवणपडिहणिया।
एक्कपएच्चिय पुत्तय ! पणस्सए दीवयसिहव्व ॥१॥
णीहारहारधवलोवि वच्छ ! सेसो गुणाण संघाओ।
विणएण विणा वयणं व नयणरहियं न सोहेइ ॥२॥
अच्चंतपिओऽवि परोवयारकारीवि भुयणपयडोऽवि।
वज्जिज्जइ पुरिसो विणयवज्जिओ गुरुभुयंगोव्व ॥३॥
इय दुव्विणयत्तणदोसनिवहमवलोऊण बुद्धीए।
पुत्त ! रमेज्जसु विणए समत्थकल्लाणकुलभवणे ॥४॥

– महावीर चरियम्

भावार्थ - आर्यसंस्कारवासित माता-पिता के संतान रूप में नयसार विशिष्ट प्रकार के सर्वसंगत्यागी महात्माओं का सम्पर्क नहीं पा सका था, फिर भी-

- अकार्य प्रवृत्ति में आलसी था।
- परपीडा कार्य से विमुख था।
- गुणसमूह के उपार्जन में जागृत था और
- दूसरों का छिद्र (दोष) देखने में अन्धथा।

इस प्रकार के अपने पुत्र में विशेष गुणों का आविर्भाव हो इसके लिये माता-पितादि श्रेष्ठलोग कहते थे-

पुत्र, अविनयरूप पवन विपुल धन ऋद्धि को दीपशिखा की तरह क्षण में नष्टकर देता है। एक से बढकर एक सभी गुण, विनय बिना शोभायमान नहीं होते है। जैसे कि नेत्ररहित मुख शोभा नहीं पाता। इसलिये हे वत्स, अत्यंत प्रिय परोपकारी और विश्वप्रसिद्ध ऐसे भी लोग संसार में उद्धत होते हैं, विनयशील न

हो तो भयंकर काले सर्प की भाँति वह त्याज्य है। अतः हे पुत्र, विपुल गुणों का उद्भव स्थान विनयगुण का उपार्जन करने में अपनी बुद्धि से विचारकर रमण करते रहना।' गुणनिधिनयसार को माता की शिक्षा इस प्रकार प्राप्त होती। इसलिये बाल्यकाल से ही विवेकयुक्त विकास हुआ।

योग्य अवसर पर एक नगर के राजा बने। पुण्यबल से प्रजापालक बनकर प्रजावत्सल रू प में जीकर प्रजा का प्रेम पाये। इसी प्रकार अपने से अपने उपरी राजा के भी कृपापात्र बनें। बड़े राजा का चार हाथ इनके ऊपर था। एक समय बड़े राजा को महल के लिये कीमती लकडियों की आवश्यकता थी। विश्वासपात्र के रू प में नयसार को सुपरवाइजर के पद पर नियुक्तकर भेजा।

भोजन लेने जाते ही नयसार अतिथी की खोज में दूर द्रष्टि रखता है।

जंगल में भी महल की भांति पर्णकुटीर में रहना था। दास-दासी आदि से सेवा पाता था। अधिकारियों तथा मजदूरों पर मात्र ध्यान ही रखना था।

मध्याह्नकाल होते ही भोजन के लिये निमंत्रण आया, पेट में भूख भी जोरो की लगी थी। लेकिन विवेकबल से 'अतिथि को भोजन कराये बिना भोजन नहीं करना' ऐसी पूर्व की अपनी प्रतिज्ञा याद आयी। अपनेलोगों में क्या आज ऐसी कोई प्रतिज्ञा है? अपने द्वार पर आये हुए महात्मा आदि के लिये अहोभाव कितना ? यह घटना एवं प्रतिज्ञा प्रेरणाकुंड की तरह नहीं लगती ?

स्वयं अतिथि की शोध

नयसार जैन कुल में जन्म नहीं पाया है। आर्य-संस्कार की विरासत भी उन्हें जिस प्रकार की प्रतिज्ञा लेने के लिये प्रेरित एवं व पालन के लिये तत्पर करती है, इसे देखते ही स्वभावसिद्ध उनकी योग्यता की कल्पना की जा सकती है। लायकात एक सहज वस्तु है, जिसे माँगकर ली नहीं जा सकती। यह स्वभावशुद्ध गुण है। उसे प्रकट करना होता है। भगवान कौन व किस प्रकार बना जाता है, उसे समझने के लिये प्रभु का जीवनचरित्र कितना उपकारी है यह बात सहज ही समझ में आती है न ? अन्यशास्त्रों में भी मातृदेवो भव, पितृदेवो भव, अतिथिदेवो भव तथा कंन्या को पतिगृह जाने हेतु विदा करते समय पतिदेवो भव आदि हितशिक्षा की सुनी जाती बातें भूमिका के गुण समान है। ऐसी योग्यतावाली आत्माएँ सामान्य निमित्त मिलते ही शीघ्रता से आगे बढने लगता है। तलहटी से शिखर तक पहुँचानेवाला यह सोपान है, **मूल के कच्चे कभी सच्चे नहीं बन पातें।**

अन्यत्र भी अतिथि की व्याख्या करते हुए कहा गया है कि-

'तिथिपर्वोत्सवा सर्वे त्यक्ता येन महात्मना।
अतिथिं तं विजानियात्छेषमभ्यागतं विदुः॥'

जो महात्माने धर्मसाधना के लिये तिथि-पर्व-उत्सव को गौण बनाये हैं, जो सदा एकसमान निश्चित साधना में अनुरक्त रहते हैं वे अतिथि है इसके अलावा मेहमान है। यह व्याख्या सच्चे अर्थों में सर्वसंग के त्यागियों के लिये लागु पड़े ऐसी है। नयसार की प्रतिज्ञा है कि अतिथि को भोजन कराये बिना भोजन करूं नही। इसके लिये सभी प्रकार के साधन संपन्न होते हुए भी, नौकर-चाकर के होने पर भी स्वयं अतिथि की खोज में निकल पड़ते हैं क्यों ?

अतिथि को पाने की भूख तीव्र है इसके कारण पेट की भूख गौण लगती है। दूसरा कारण गया है कि-साधुनां दर्शनं पुण्यं तीर्थभूता हि साधवः यह मालूम है ? साधहै कि स्वयं जिस तरह अतिथि की खोज कर सकते, उस तरह कोई अन्य कैसे ढुंढ सकता है ? देखने जैसी बात यह है कि जंगल में भी उन्हें अतिथि चाहिये। जब तुम्हें शहर में भटका जाय ऐसा कहुँ ? या मिले तो भी ऐसा कहुं ? उन महानुभाव के भव्य भावी का ही यह परिपाक है। नयसार जंगल में अतिथिशोधके लिये निकल पड़ता है। काफी ढूंढने व एड़ी-चोटी पसीना बहाने के बाद बड़े सौभाग्य से पसीने से भीगे हुए सर्वसंगत्यागी ऐसे महात्माओं का दर्शन उन्हें होता है। नयसार का मुख ही नहीं, बल्कि हृदय खिल गया और साधु से सविनय पूछा कि महात्माओ ! हमारे सदृश शस्त्रधारी भी जिस जंगल में अकेला घूमता नहीं तो आप ऐसे जंगल में क्यों घुमते हो ? महात्माओं ने अपने सार्थ सहित प्रयाण एवं गाँव में गोचरी हेतु जाते सार्थवियोग की बात बतायी, नयसार को नामुनासिब लगा, स्वार्थी सार्थ के प्रति गुस्सा भी आया, फिर भी 'पापानां वार्तयाप्यलम्'कहकर अपने उत्तम भाग्य से पुलकित होकर महात्माओं को आमंत्रण देता है। आहार-पानी का दान देता है। उन्हें रहने-वापरने(उपयोग करने, गोचरी करने आदि) के लिये स्थान बताता है। इसके बाद स्वयं भोजन करता है। ऐसे महापुरुष की महानता पर जरा विचार करना। आज हम कभी ऐसा भी अनुभव करते हैं कि 'थके-मांदे आये होते हैं तो पूजा के वस्त्र पहने व्यक्ति को जैन समझकर रास्ता पूछते हैं तो वे बताते कि साहेब, पहले इस तरफ जायें, फिर दाहिनी तरफ घुमें और फिर सीधा जाये तो सामने ही उपाश्रय दिखाई देगा' ऐसा कहते, लेकिन साथ में आने की इच्छा रखते नहीं। इसका कारण है कि अतिथि की पहचान और अतिथि के आदर का यथोचित ज्ञान ही उन्हें नहीं मिला हैइसलिये ?

सभा- साहेब, रोज मिलते है और अनेक मिलते हैं इसलिये ऐसा हुआ होगा ? कहा जाता है न कि- अतिपरिचयादवज्ञा ?

पूज्यश्री- भले आदमी, यह वचन पागलों का हैं। विवेकवानों को तो जैसे-जैसे सुविहित महात्माओं का सान्निध्य मिलता है, वैसे-वैसे उनका बहुमान भक्ति बढती जाती है। कहा भी का दर्शन ही पवित्र गिना गया है और साधु तो तीर्थरू प होते हैं। ऐसा जानने-समजनेवाले को अनादर होने का प्रसंग आऐ ? महात्माओं केप्रति अनादरभाव यह तो अपने हित का अनादर है ऐसा कहा जा सकता है।

नयसार महात्मा को आग्रहसहित भोजन अर्पण करते है।

सम्यक्त्व की प्राप्ति

नयसार शाम ढलते ही महात्माओं को स्वयं विनती करता है। भगवन्! पधारीए, आप राह भूले हो, मैं आपको मार्ग पर चढा दूँ। तब सज्ज महात्माओं को रास्ता दिखाने भी स्वयं चलता है। उस समय उन महात्माओं में से देशनालब्धिसंपन्न एक महात्मा नयसारकी सुबह से शाम तक की विवेकभरी

महात्मा के पास श्रद्धापूर्वक नमस्कार महामंत्र का श्रवण करते हुए नयसार।

प्रवृत्ति देख उसकी योग्यता के अनुरूप उपदेश देने की इच्छा से कहते हैं कि 'महाभाग ! तुम हमें भटके राह से सही रास्ते पर लाया यह द्रव्य मार्ग है, संसारमें तुम भूले-भटके हो 'संसारे भूला भमो रे भाव मार्ग अपवर्ग' मोक्षमार्ग सही मार्ग है। यह सुनकर नयसार महात्माओं से कहता हैं कि 'भगवन् ! आप अपने शिष्य के समान समझकर मेरे योग्य जो उचित है वह फरमाएजी ।' ऐसे महापुरुष की लघुता अपने दिल को छू जाय ऐसी है। कर्म की लघुता होने के बाद आत्मा कितना नम्र -सरल और विवेक प्रधान बनता है वह महावीरप्रभु की आत्मा में हूबहू देखा जा सकता है । अद्यापि धर्म नहि पाये हुए नयसार की महानता का वर्णन करते हुए शास्त्रवचन पचाने योग्य है।

भो महायस ! कुमग्गपरिब्भमणपीडियाणं तण्हाछुहाभिभूयाणं अम्हाणं तहाविहपडिवत्तीए असणपाणदाणेण य परमोवयारी तंऽसि ता किंपि असुसासिउं समीहामो, गामचिंतएण भणियं-भयवं ! किमेवमासंकह ? नियसिस्सनिव्विसेसं सिक्खवेहित्ति । -महावीरचरियम् ।

भावार्थ- 'अतिथि को भोजन दिये बिना भोजन नहीं करना ।' ऐसा नियम रखनेवाले नयसार को सर्वसंगत्यागी साधुजन मिल गये, उन्हें आहार-पानी का दान किया और फिर गन्तव्य मार्ग प्राप्त कराने की तैयारी करने लगे। तब उन महात्माओं में से धर्मदेशना लब्धिसंपन्न एक महात्मा नयसार की योग्यता देखकर कहते है।

हे महायश! गलत राह पकड़ लेने से पीडित, भूख-प्यास से पराभूत हुए हम सबको आदरपूर्वक खान-पान का दान करके तुमने द्रव्योपकार किया है। अतः तुम्हें कुछ हितकर बातें कहना चाहते हैं।

तब नयसार कहता है कि-

भगवन् !आप कहने में इस प्रकार संकोच क्यों कर रहे हो ? मुझे अपने शिष्य सदृश ही समझकर, जो कहने योग्य है उसे आप कृपा करके कहिये।

जीव की पात्रता जब दिखाई देती है तो हमें भी ऐसे जिज्ञासु जीव को व्यक्तिगत भी कहने का मन हो जाता है। लायक जीव कुछ न कुछ पा लेता हैं ऐसा अनुभव में आता हैं। ये तो महावीरदेव का जीव था न ? महात्मा ने उपदेश दिया, स्तवन में भी इस बात का कैसा उल्लेख मिलता है ? 'देव-गुरु ओळखावीआ रे, विधिदीयो नवकार ।' सम्यक्त्व-मिथ्यात्व का स्वरूप समझ में आते ही ये महाभागने मिथ्यात्व को छोड़ा और सम्यक्त्व का स्वीकार किया।

हमारी क्या दशा है ? भगवान महावीर परमात्मा की आत्माने तो नयसार के भव में सम्यक्त्व पाया। तब से प्रभु का पंचेन्द्रियवाली चारो गति मिलकर २७ भव हुए। सम्यक्त्व पाते ही हो रहे परिवर्तन देखने योग्य है।

नयसार की विनती

समकीत पाते हि, जीव की प्रवृत्ति पलटे या न पलटे, परन्तु परिणाम अवश्य पलट जाते है। स्वर्गीय परम गुरुदेवश्री अनेक बार फरमाते थे कि- समकिती का मन मोक्ष में, अब घर का नहीं बल्कि मोक्ष का हो गया। जीवमात्र के प्रति उसकी भूमिका पलट (बदल)जाती है। इसीलिये कहा हैं कि 'एक **जीव समकित पाता है अतः चौदह राजलोक में अभयदान का ढिंढोरा पीटा जाता है। एक जीव साधुजीवन को अपनाता है तो चौदह राजलोक के जीवों के लिये अभयदान की सत्रशाला खुल जाती है।'** एक में सव्वेजीवा न हंतव्वा का स्वीकार है। एक में त्रिविध-त्रिकरणयोग से उसका अमल है। सम्यक्त्व मोक्ष का बीज है। समकित पाते ही जीव को घरवास अप्रिय लगता है, ऐसे कहा जाय कि अब पक्षी पिंजरे से उड़ने के लिये पंख फडफडाने लगा है।

ऐसे देखा जाय तो नयसार ने द्रव्योपकार किया था, जंगल में चक्कर खाते, भटकते महात्माओं को विनयपूर्वक लाया, आहार-पानी दिया, सही मार्ग बताया, किन्तु मुनिवरों ने उसे अध्यात्म मार्ग में चलने की प्रेरणा दी। अध्यात्म का द्वार खोल दिया। हमसब की दशा सचमुच शोचने जैसी है। आज कोई महात्मा की दीक्षा में या स्थिरता में अथवा अभ्यास में कोई व्यक्ति निमित्त बनता है तो अपना यशोगान गाया ही करता है कि 'यह कार्य मैनें किया। ये महात्मा हमारे यहाँ पढे, इन्हें पढने की कोई व्यवस्था ही नहीं थी।' इस प्रकार न जाने कितनी ही कीर्तिगाथा गाये फिरते हैं। जबकि यहां आप देख सकते हैं कि नयसार का नम्र और सरल स्वभाव उसकी भावी भद्रता का संकेत देता है।

देवगुरुधर्म का स्वरू प समझे हुए नयसार महात्माओं से क्या विनती करता है ? प्रभो! आप हमारे घर पधारे। मैं और मेरा सर्वस्व आपके चरण में है।' समकिती आत्माएँ समकितदाता अपने गुरुदेव के प्रति कैसा अहोभाव और समर्पणभाव रखते हैं ? इसे इस प्रसंग से समझा जा सकता है। जैनशासन के गुरुवर्ग की निस्पृहता भी कितनी अदभुत होती है। इसी से महात्मा नयसार से कहते हैं कि महानुभाव, हम सभी संसारत्यागी साधु है। इसलिये राज्यादि की ऋद्धियाँ हमारे किस काम की है ? परन्तु यह बात उपर से इतना निश्चित है कि

सम्यग्दृष्टि आत्माओंका सर्वस्व गुरु के चरण में होता है ? शासन के लिये जब जो आवश्यकता होती है उसे सौंपने के लिये तैयार होते हैं न ? आराधक और भक्त गिने जाते महानुभावों को यह शोचने योग्य है।

हाथ पकड़ने वाले गुरु

महात्माओं को नयसार पथ दिखाता है तथा जबतक उनकी पीठ दिखाई देती है तबतक देखा ही करता है। उसका अन्तर विचार कर रहा होगा कि मुझे धर्मदान करनेवाले तथा भवसागर से पार उतारनेवाले मेरे गुरु जा रहे है। नयसार को गुरु भा गये थे। क्या भाया होगा ? गुरु का शरीर ? उनका स्वभाव ? वह नही शरीर सौष्ठव और नही अच्छे स्वभाव के कारण आकर्षित हुआ था। लेकिन इन्हें लगा कि भवजंगल में भटक रहे मुझ जैसे राही का हाथ पकड़नेवाले मार्गदर्शक ये मेरे गुरु है। देवगुरु के प्रति ऐसी प्रतीति यह सम्यक्त्व का परिपाक है।

रहे परन्तु रमे नहीं

नयसार अपना काम पूरा करके अपने नगर में वापस आया, बडे राजा का काम पूर्ण करके इन्हें संतुष्ट किया। अब नयसार को अर्थ-काम पर से दृष्टि हट गयी है। अरे ! उसके आचरण में बदलाव आ गया। संसार की चाहत थी उसके बदले संसार को पीठ दिखाने लगा। आपने कभी विचार किया है कि मेरी नजर संसार की तरफ है या पीठ ? भगवान कहते हैं कि मेरे श्रावक-श्राविका संसारी है,संसार में रहते हैं, संसार में जो रहे उसे ही श्रावक-श्राविका कहा जाता है, परन्तु वे संसार में रमण करते नहीं, आशय यह है कि वे संसार में रहते तो हैं लेकिन उसमें तल्लीन नहीं होते। नयसार नमस्कारमंत्र की आराधना, प्रभुभक्ति आदि सम्यक्त्व की शुद्धिजन्य कार्यों में ओत-प्रोत हो जाता है। इसके बाद अन्त में शुभभावना में देह छोड़कर प्रथम-सौधर्मदेवलोक में देव स्वरूप में उत्पन्न होता है। निर्मल सम्यग्दर्शन के प्रभाव से निर्लेप भाव में भोग की ऋद्धि में शाश्वततीर्थों की यात्रा, तीर्थंकरप्रभु की वाणी का श्रवण आदि करते हुए समय व्यतीत करने लगता है। समकित को शुद्ध बनाते रहता है। देवलोक की पुष्कल ऋद्धि और प्रचुर भोगसामग्री होते हुए भी उससे अलिप्त रहता है। यहाँ भी कहा जा सकता है कि रहते हैं पर रमते नहीं। तात्पर्य यह है कि सांसारिक भोगविलासादि में लिप्त नहीं रहते।

इसके बाद देवलोक का आयुष्य भी पूराकर भरतचक्रवर्ती के यहाँ वामा रानी की कुक्षि में शुभस्वप्नपूर्वक नयसार का अवतरण होता है।

श्री भरतचक्रवर्ती के विशाल अन्तःपुर में वामारानी कुक्षि में रत्न धारण करनेवाली, शील, सौन्दर्य और सत्ववती स्त्री थी। देवलोक से च्यवनप्राप्त नयसार की आत्मा शुभस्वप्नसूचन के साथ रानी की कुक्षि में अवतरी। समुचित समय होते ही एक मध्यरात्रि के शुभ घड़ी, शुभ समय में जन्म होने के बाद बालक की शरीरकांति से समूचा जन्मघर प्रकाशमय हो गया। मरीयंची या मरीचि अर्थात् किरण... अंधकार में प्रकाश फैलानेवाला इस बालक का नाम इसी से मरीची रखा गया।

तप व संयम के लिये साधुजीवन

चरम तीर्थपति श्रमण भगवान श्रीमहावीरदेव के तीसरे भव स्वरूप में ख्यात मरीची नामक भव अपना एक महत्वपूर्ण स्थान रखता है। मरीची का बाल्यकाल, किशोरावस्था और अध्ययनकाल पूर्ण हुआ, वह युवावस्था में प्रवेश करता है, इतने में युगादिनाथ भगवान श्रीऋषभदेवस्वामी के आने का समाचार इन्हें मिलता है। देवों द्वारा चार प्रकार से की जाती पुष्पवृष्टि आदि देखकर एवं प्रभु की एक हीं देशनाश्रवण से मरीची प्रतिबोधित हुआ। प्रतिबोध अर्थात् ? आज तो अमुक गुरु महाराज से मैं धर्म पाया इसलिये अमुक व्रत का पच्चक्खाण लिया इत्यादि... वास्तव में धर्म का मतलब ही है साधुपना, प्रतिबोधपाने के प्रसंगों में सर्वविरति या देशविरति की बात विशेष प्रकार से देखने को मिलती है ! मरीची प्रतिबोधपाया इसलिये माता-पिता की आज्ञा लेकर भगवान ऋषभदेवस्वामी के पास दीक्षाग्रहण किया। दीक्षा स्वीकार के बाद एक तरफ घोर तप तो दूसरी ओर स्वाध्याय की धूनी लगा ली। इन दोनो साधनाओं के बदौलत शनैः शनैः कदम दर कदम संयम के साधक बन गये। मेरे परम तारक परम गुरुदेवश्री ऐसा कहते थे कि 'तप और संयम के लिये मैनें तुम्हें दीक्षा दी है। यहां आकर तप और संयम की जगह दूसरा कुछ करते देखे तो सच्चे अर्थ में जो गुरु होंगें उसके हृदय में क्या होगा, वह तुम्हें क्या मालूम ?' मरीची तो तप एवं संयम में मग्न हो गये है, एक आदर्श साधु जीवन जीने लगे है।

परिषह -उपसर्गों को सहन करने में देह की परवाह किये बिना ही एकचित्त हो गये। घोर तपश्चर्या और साधनाओं को देखकर लगता है कि

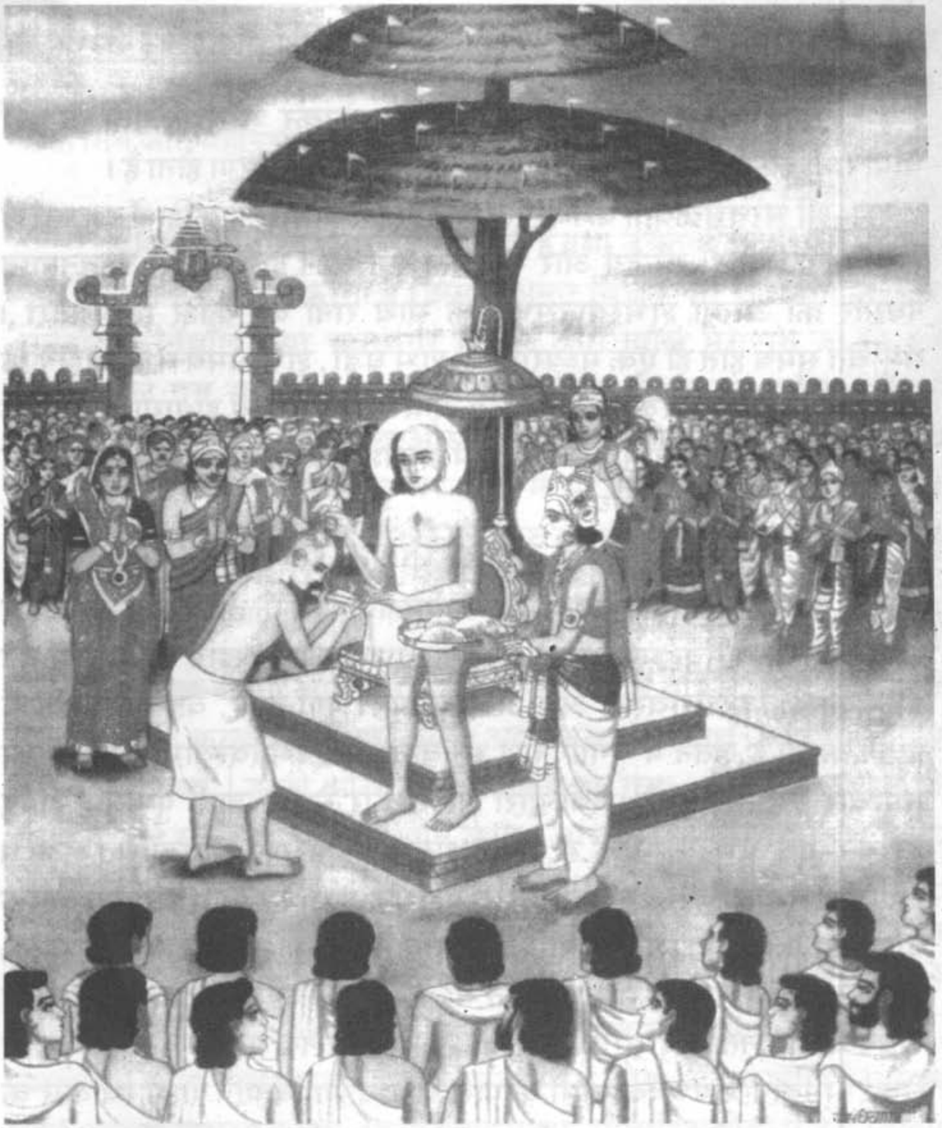

प्रथम तिर्थंकर भगवान ऋषभदेव मरीची को दीक्षा दे रहे है।

कर्मराजा के समक्ष कोई योद्धाने जंग छेड़ दिया । इतने तप-जप व संयम के बीच अल्पकाल में ही ग्यारह अंगों के पाठी हो गये । सूत्र व अर्थ से ग्यारह अंगों का ज्ञान संपादन करके गीतार्थपना को प्राप्त किया । इसके साथ ही अद्भुत देशनालब्धिसंपन्न हुए । भूख और प्यास, शीत एवं ताप आदि के मध्य दीर्घकाल पर्यन्त निर्मल चारित्र का पालन किया ।

मोहरूपी अजगर का घिराव

माघ मास की कड़ाके की ठंडी इनके रोम को हिला न सकी, ग्रीष्मकाल की अग्निवृष्टि समान गरम हवा इन्हें अशान्त न बना सकी, लेकिन एक बार जाने की काल की नजर इन पर लग गयी। ग्रीष्मकालीन ताप की तपन इस हद तक तपने लगी कि मन-वचन काया से महासंयमी मरीची का तन-बदन ही नही बल्कि मन भी चंचल हो गया। महानुभावो, पूर्वों के पूर्व पर्यंत काया की माया छोड़कर तपोमय संयम की साधना करते जिन्होंने कभी शरीर का परवाह नहीं किया, ऐसे मरीची को भी मोहरू पी अजगर ने अपने घिराव में जकड़ लिया। फिर काच की काया को कहीं आँच न लगे उसके लिये सतत सोते-जागते चिन्ता करनेवाले अपने लोगों की बात ही क्या करनी? एक समय गरमी के कारण विचार में पड़ गया। इसे कैसे सहन किया जाय? एक ओर संयम पर राग है, दूसरी ओर कर्म का जोरदार पराक्रम है, अर्थात् संयम खूब भाता है और कर्मराजा ने उनके मनोबल पर प्रहार किया है। इसके कारण मन निर्बल हुआ है। इसके बावजूद भी साधुवेश को दूषित करने की इच्छा नहीं है। वेश की मर्यादा को जिस प्रकार जानता है उस प्रकार पालन करना चाहिये, ऐसा निर्णय है। इस परिस्थिति में इनकी आंतरिक मनोस्थिति क्या होगी? निर्मल सम्यग्दर्शन और चारित्रमोहनीय का प्रहार ये दोनो के बीच में उनकी संवेदना को वही जान सकते न? साधुवेश के प्रति उनका आदर इतना अद्भुत था कि ऐसे विचार आते ही उन्हें ऐसा लगने लगा कि 'अब मैं चारित्र के लायक रहा नहीं।' एक ही बात इन्ही के मनमें रही मेरे कारण धर्म का यह निर्मल मार्ग मलीन न होना चाहिये। धर्म का यह मार्ग अनेकों का तारक है।, मार्ग मलीन हो जायेगा तो हजारों को तैरने का साधन टूट जायेगा। ये भी मुझे अच्छा नहीं लगता और मार्गभेद होगा वो भी रुचता नहीं है। कारण कि सम्यक्त्व निर्मल है। चारित्र मोहनीय के उदय से देह की सुश्रूषा की इच्छा होती है, यह भी खटकता है, यह सम्यक्त्व का प्रभाव है, इसी से अपने दोषों को प्रकट करनेवाला वेशधारण के लिये इन्होंने विचार किया है।

कर्मराजा और धर्मराजा

भगवान श्रीमहावीर परमात्मा के चरित्र की बातें करते हुए ऐसा लगता है कि प्रत्येक तीर्थंकरदेवों का और महापुरुषों का जीवनचरित्र बारंबार पढने

योग्य है। जीवन जीने की कला जानने को मिले ऐसी ये घटनाएँ हैं। प्रभु की आत्मा ने मरीची के भव में दीर्घकाल तक चरित्र पालन किया तथा कर्म के थपेड़ों की चोट खाते ही निर्बल विचारों का उदय हुआ, उसके सामने सम्यक्त्व ने जो पराक्रम बताया उसे हम सभी देख ही रहे हैं। इसी से शास्त्रकार सम्यक्त्व का जगह-जगह खूब गुणगान किया करते हैं। **समकीत जबतक न प्राप्त हो तबतक आत्मा संसार के हाथों गिरवी है ऐसा उसका व्यवहार होता है एवं समकीत पाते ही शासन को सर्वस्व सौंप दिया हो ऐसी मन:स्थिति होती है। पुद्गल की आबादी में अपनी आबादी माननेवाले जीव जब समकीत पाते हैं तब उसे पुद्गल का संगमात्र बरबादी का कारण लगता है।** कर्मबंधके कारणों से सम्यक्त्वी सावधान होता रहता है, उसे मालूम भी होता है कि संसार में कर्मसत्ता दृष्टि में आयी सत्ता है। आपसब जानते है न ? दुनिया की सत्ता अंधसत्ता है और कर्मसत्ता देखती सत्ता है ? दयालु परम तारक गुरुदेवश्री के श्रीमुख से सुना है कि **'कर्मराजा ने श्रीअरिहंतदेवों का चरण चुमकर विनती की हैं कि आपके सेवक व आज्ञापालक की सेवा करने के लिये मैं प्रतिबंधित हूं**

नवीन वेश में मरीची महात्माओ के साथ विहार करते है।

इसके विरुद्ध वर्तन करनेवालों की खबर लेने के लिये मैं सतत जाग्रत रहता हूं।' जिस मरीची की हम बात कर रहे हैं वे तो ये सभी जानते ही थे, किन्तु कर्मने उसके उपर जबरदस्त हमला कर दिया है। ग्रीष्मकाल की उष्णता से संतप्त होकर विचारपंक में फँस गये है, लेकिन मार्ग को किसी भी प्रकार से जरा भी हानि न पहुंचे इसकी उन्हें चिन्ता है। इसीलिये उनका विचार जानने जैसा है।

मरीची के विकल्प

मरीची विचार करता है कि क्या करना चाहिये ? यहां रहकर दोषग्रस्त होना नहीं, पूर्ववत् शुद्ध चारित्र का पालन असंभव लगता है। क्या अपन को नहीं लगता है कि उसने कितने प्रयास किये होंगे ? थकने के बाद ही लगा होगा कि अब क्या करुं ? क्या उपाय करना चाहिये ? देशान्तर चला जाउं ? अथवा तो ये सब मन की व्यथा किसे बतलाउं ? सभी विकल्पों से निकला, प्रव्रज्या छोड़कर अपने घर चला जाउं यही अवसरोचित है। ओ हो... हो... छह खंड साम्राज्य के भोक्ता भरतचक्री का पुत्र होकर स्वयं छोड़े हुए घर कैसे जाया जायेगा ? मुझे प्रतिज्ञाभ्रष्ट जानकर मेरे माता-पिता स्वयं लज्जा से नतमस्तक नहीं हो जायेंगे ? मेरे साथ जन्मे हुए व बड़े हुए मेरे मित्र आदि स्वयं स्वीकारे हुए श्रेष्ठ धर्म से भ्रष्ट जानकर मेरी अवहेलना नहीं करेंगे ? या महापापाचारी मैं किसका दृष्टांत बनूंगा ? इसलिये घर जाना बिल्कुल उचित नहीं है। इसके लिये सभी प्रकार से मन का नियमन करना (एकचित्त होना) यही उचित है। लेकिन यह जरा भी संभव नहीं लगता। तब यह यतिधर्म अत्यन्त अप्रमत्त महासात्विकों के द्वारा करने योग्य है। मैं एकदम कायर हो गया हुँ, क्या करुं? किस उपाय का अनुशरण करुं ? इस प्रकार किंकर्तव्यविमूढ हुए मरीची, कर्म की अचिन्त्य महिमा से, जीव की भवभ्रमणशीलता से अवश्य भावी के योग से विचारते हुए दोनो बात रहे अर्थात् कि घर भी जाना नहीं पड़े एवं साधुधर्म का भी अपमान नहीं हो। इस तरह स्वस्फूर्तबुद्धि के अनुसार मरीचीने वेश परिवर्तन की कल्पना की है। स्तवनकारने भी गाया हैं 'नवो वेश रचे तेणी वेळा, विचरे आदीसर भेळा।' साधु-महात्मा से अलग ही वेश रचकर मुनिधर्म का त्याग करके परिव्राजक वेश धारण किया। यहां स्मरण रहे कि साधुपना को गँवाया परन्तु, सम्यक्त्व को टिकाया है, प्रभुवचन का पक्षपात बकरार रखा है।

हमने देखा कि नये वेशधारण में घर जाने केसंभवित भयस्थानों से बचने का भी इरादा है और साधुवेश की मर्यादा को पालने में कमजोर होने से वेश की वफादारी भी कारण है ऐसा समझा जा सकता है । लेकिन वे तो लज्जालु थे इसलिये । जो लाज-शरम छोड़ देता है उसके लिये क्या ? इस वेश में भी मर्यादाशून्य होकर जीना हो तो कौन रोकनेवाला है ? इसके साथ ही घर जाकर रहना हो तो भी कौन बोलनेवाला है ? लज्जा नामक गुण से, निर्मल सम्यक्त्व के प्रभाव से और हृदय में पड़ी वेश की वफादारी से स्वबुद्धिकल्पित वेश में भी इन्होंने जो शोचा है, उसे आप स्तवन में सुनते ही हैं । इसके साथ ही शास्त्रकारों ने भी खुब स्पष्ट शब्दों में वर्णन किया है, उसे भी इस अवस्था में उनकी विशेषता को समझने के लिये पर्याप्त है ।

मरीची की वेशकल्पना

भगवान श्रीमहावीरदेव के वर्तमान में उपलब्धजीवनचरित्रों में प्राकृतशैली में रचा गया श्रीगुणचंद्रगणि का 'श्रीमहावीरचरियं' विस्तृत गिना गया है । किसी महात्मा का सुयोग पाकर संपूर्ण अक्षरशः सुन लेने जैसा है ।

त्रिदंडिक वेश में मरीची ।

मरीची की वेशकल्पना का वर्णन करते हुए ग्रन्थकार ने कमाल की है। मरीची के विचार का परिचय शब्ददेह में देते हुए कहा गया है।(१) मुनिभगवंत मन वचन काया के दंड से रहित है। अशुभ व्यापार के त्याग से संलीनदेहवाला है। मैं ऐसा नहीं हुँ कारण कि मैं इन्द्रियों से हारा हुँ, उच्छृंखल मन वचन काया से पराजित हुआ हुँ इसलिये मेरी पहचान करानेवाला त्रिदंड का प्रतीक हो। जिससे कि मुझे पूर्वजीवन की प्रतीति हो और मैं यह चिह्न देखते ही मेरे दुश्चरित्र के पश्चाताप से विशिष्ट पालन हेतु उद्यमी बनूं। (२) महात्मा केशलोच और इन्द्रियनिग्रह से मुंडित है। मैं इन्द्रियनिग्रहरहित हुँ इसके लिये मेरे व्यर्थ के केशलोच से क्या ? इसके लिए अस्तुरा से मुंडन और मुनिवेश से अलग दिखनेवाला शिखाधारण हो। (३) महात्मा त्रिविध-त्रिविधरूप से पापव्यापार का त्यागपूर्वक संयम पालते हैं। मैं उस लायक अब रहा नहीं। इसलिये मेरे स्थूलता से पाप का त्याग हो।(४) मुनि सर्वत्यागी अकिंचन होते हैं मैं वैसा नहीं हूँ, इसका अविस्मरण रहे इस हेतु सोने की यज्ञोपवीत आदि परिग्रह हो।(५) मुनिभगवंत जिनोपदिष्ट संपूर्ण शीलजल से कर्ममल को शुद्ध करनेवाले होते हैं, इसी से शीलसुगंधसे सुशोभित हैं। मैं निर्मलता की दृष्टि से दुर्गंधवाला हूं, इसलिये गंधचंदन आदि का प्रयोग दुर्गंधनिवारण के लिये हो। (६) तपस्वी मोहमुक्त होते हैं और निष्कारण उपानह अर्थात् जूते चप्पल का उपयोग पादत्राण के लिये नहीं करते किन्तु, मैं तो मोहवश शरीर की रक्षा के लिये सचेष्ट हुं इस हेतु मेरे लिये छत्र व उपानह का परिभोग हो।(७) साधु श्वेत-मानोपेत जीर्णप्राय वस्त्र के उपभोक्ता होते हैं। मैं तो गाढ कषायों से कलुषित बुद्धिवाला हुं इसलिये मेरे धातुरक्तरंजित वस्त्र हो।(८) मुनिजन पापव्यापार से पर होते हैं, इसके लिये अनन्तजीवों से व्याप्त जल के आरंभ को मन से भी इच्छा नहीं करते, जब कि मैं तो संसार के अनुसार बुद्धिसे चलनेवाला हुं इसलिये मुझे परिमित जल से स्नान-पानादि हो।

देशना लब्धिऔर प्रतिबोध

महानुभावों ! मरीची की बुद्धिकल्पना भी कैसी है ? स्वदोष दर्शन कितना दुर्लभ है ? दोषदृष्टि स्वदोषदर्शन के लिये उपयोग हो तो काम बन जाय न ? जगत के दोष देखने से स्वयं दोषपरिपूर्ण होते है, स्वयंदोष दर्शन से जीव निर्दोष बन जाता है। इतनी सीधी सी बात की समझदारी हमारे में इस प्रसंग के

सुनने से उत्पन्न हो जाय तो ? लेकिन "वो दिन कब जब मीयां के पाँव में जूत्ता" जैसी अपनी दशा है। भव का भय न होगा तबतक क्या हो सकता है ?

अब मरीची पूर्ववत् श्रीऋषभदेव प्रभु के साथ में विहार करता है। नूतनवेश लोग देखते हैं, तमाशा का होड़ न लगे, प्रभु का दर्शन प्राप्त करके एवं देशना सुनकर लोग मरीची के पास आते हैं, और पूछते कि धर्म क्या है ? सूत्रार्थ के ज्ञाता देशनालब्धिसंपन्न मरीची शुद्ध साधुता को धर्म बताकर उसका सुंदर स्वरूप उभारते हैं। लोग पूछते कि भगवन् ! जब मुनिमार्ग ऐसा है तो आप इसे क्यों नहीं अपनाते ? तब मरीची बताते कि महानुभावो, मैं तो संसारानुसारी हो गया हुँ। मोहराजा से पराजित हुँ। आप लोग ऐसा न विचारे कि मेरी कथनी व करनी दोनो अलग है। मेरे गुणदोष का विचार छोडकर रोगपीडित वैद्य की भाँति इनके द्वारा बताया गया श्रेष्ठ औषधरू पी सच्ची बात को स्वीकारें और संसार तारक मुनिधर्म प्राप्त करें।

मरीची की बात से भववैराग्य प्राप्त महानुभाव दीक्षा हेतु तैयार होकर आते हैं, तब मरीची शिष्यभाव से आये सभी को भगवान श्रीऋषभदेव के पास सौंप देता हैं। इस प्रकार प्रतिदिन लोगों को प्रतिबोधदान करते हुए, स्वदोष निंदा करते हुए, सुसाधुता का पक्ष ग्रहण करते, सूत्रार्थ का चिंतन करते सुखशीलपरायण व अपने कल्पित वेश में रहते हुए प्रभु ऋषभदेव के साथ विचरण करते हैं।

भरत महाराजा को परितोष

भगवान ऋषभदेव भरतभूमि को पावन करते-करते अष्टापदगिरि पर समवसरे हैं। भाईयों के संयमग्रहण से शोकाकुल भरतमहाराज प्रभु को वंदन करके भाईमुनियों को मोहवश भोग हेतु विनती करते हैं। निर्लिप्त महात्माओं के निस्पृहभाव से दंग हुए भरत पाँचसौ गाड़ी भरकर मंगाये हुए उत्तम द्रव्यों को ग्रहण करने के लिये विनती करते हैं। लेकिन आधाकर्मी और लाये गये आहार का निषेधहोने पर, स्वयं के लिये तैयार किये आहारपानी का आग्रह करते हैं। तब राज्यपिंड साधु को नहीं कल्पता है यह जानकर अत्यन्त दुःखी हो जाते हैं, इनके दुःख को दूर करने के लिये इन्द्र महाराजा प्रभु से अवग्रह का स्वरूप और इसका कारण पूछते हैं। तब भगवान वर्णन करते हुए बताते हैं कि मुनिजीवन में जीने के लिये रहने योग्य वस्ती में लोकार्ध स्वामी इन्द्र महाराज चक्रवर्ती राजा, मंडलीकराजा-मकान मालीक और पहले पधारे हुए महात्मा आदि की अनुमति

इत्यादि का स्वरू प बताते हैं। इन्द्र अपने लोकार्ध में विचरणकर लाभ देने के लिये निवेदन करते हैं तब चक्री अपने षट्खंड में विचरने हेतु विनतीकर प्राप्त लाभ से संतोष पाते हैं, इसके बाद शक्रेन्द्र महाराजा के निर्देशानुसार अपने से गुणबहुल साधर्मिक बंधुओं की भक्ति में ओतप्रोत हो जाते हैं। सर्वार्थसिद्ध विमान से मनुष्यत्व प्राप्त और तद्भव मुक्तिगामी श्री भरतमहाराज एक के बाद एक घटनाओं से दुःखी हुए थे, लेकिन अवसर जानकर इन्द्र महाराजा ने उनका दुःख हल्का हो इस तरह प्रभु से अवग्रह की व्यवस्था इन्हें बतायी। इसके फलस्वरूप भरतमहाराजा संतोष-परितोष पाये, आप लोग तो अवग्रह की व्यवस्था जानते हो न ? चक्रवर्ती की व्यथा और संतोष, ये वस्तुतत्त्व की अज्ञानता होने पर भी विवेक होने से संभव हुआ है।

भावि तीर्थंकर संदर्भ में प्रश्न

समवसरण की अद्भुत रचना और प्रभु का परमैश्वर्य अच्छे-अच्छे के दिल में चमत्कार पैदा कर देता है। इसी से ऐसा कहा गया है कि 'सभी प्रकार के कुतुहलवृत्ति से पर ऐसे साधुओंने कभी भी समवसरण का दर्शन नहीं किया हो, और मालूम हो कि बारह योजन में समवसरण रचा गया है तो अवश्य ही दर्शन करने जाना चाहिये अन्यथा प्रायश्चित का हकदार होता है' अर्थात् समवसरण के दीदार आत्मा के दीदार को पलटा दे ऐसा है। मिथ्यात्वादि भावों को दूरकर सम्यक्त्वादि गुणों को पैदा कर दे ऐसा है। श्रीभरतमहाराज प्रभु की समवसरणऋद्धि को देख इनसे पूछते हैं कि 'प्रभो ! आप जैसे भुवनगुरु हैं ऐसे इस भरतक्षेत्र में कोई दूसरे होनेवाले हैं ?' प्रभु ने कहा कि होंगे। फिर तेइस तीर्थंकरों का स्वरू प वर्णन किया। इसके बाद तो चक्रवर्ती के संदर्भ का भी जवाब दिया, तब फिर चक्री विशालपर्षदा पर दृष्टिपात करके पूछते हैं कि प्रभो ! इस पर्षदा में से कोई तीर्थंकर बनेगा ? भरतमहाराजा के प्रश्न का उत्तर देते हुए भगवान ने परिव्राजक वेशधारी मरीची को बताते हुए कहा कि ये तुम्हारा पुत्र भरतक्षेत्र का अंतिम तीर्थंकर होगा। अर्धभरत का स्वामी त्रिपृष्ठ नामक पहला वासुदेव होगा और महाविदेह की मूका नामक राजधानी में प्रियमित्र नामक चक्रवर्ती होगा' त्रिकालज्ञानी प्रभु ने जो वास्तविकता थी उसे भली-भांति बता दिया। अपना पिता प्रथम तीर्थंकर स्वयं प्रथम चक्री और खुद का पुत्र प्रथम वासुदेव और चरमजिन एवं चक्रवर्ती होगा। ये सभी बात चक्रवर्ती भरत

महाराज को आनंददायक लगे, उसमें आश्चर्य है ? हर्षोत्फुल्ल चक्रवर्ती मरीची के पास जाते है। प्रभु की बतायी हुई बात बताकर मरीची की प्रशंसा करते हुए तीन प्रदक्षिणा करते हुए नमस्कार करते है। इसके साथ ही स्पष्टतापूर्वक बताया कि 'नवी वंदु त्रिदंडीक वेश भक्ते नमुं वीर जिनेश' अर्थात् कि आप भविष्य में तीर्थंकर होनेवाले हो इसलिये वंदन करता हुँ आपके त्रिदंडिक वेष को नहीं।

इस स्पष्टता का उद्देश्य आप समझ गये होंगे ? समकीती आत्मा यत्र-शिर झुकाते नहीं। चक्रवर्ती तो प्रणाम करके चले गए लेकिन मरीची 'अहो में उत्तमं कुलम्' इत्यादि बोलते-बोलते छत्र लेकर नाचने लगे, पांव पटककर अहंकारभाव व्यक्तकर कुलमद किया जिसके कारण नीच गोत्रकर्म बँधा, ये बात अपने यहाँ प्रसिद्ध है। जिसका अंश अंतिम भव में भी भोगने की अवस्था आयी। हँसते हुए बाँधे गये कर्म रोने पर भी छुटते नहीं है। जो कि इसके बाद भी

राजकुमार कपिल को प्रतिबोध करते हुए मरीची।

पूर्व की तरह ही प्रभु के साथ विहार किया और अनेक जीवों को प्रतिबोधकर प्रभु के पास दीक्षा हेतु भेजा, प्रभुनिर्वाण के बाद भी यही क्रम रहा। साधुपना के प्रति कैसा आदर रहा होगा ?

रोग और चिकित्सा

शरीर रोग का घर है। शरीर में रोग न हो या नहीं होवे तो आश्चर्य की बात है, रोग हो या होवे उसमें आश्चर्य की कोई बात नहीं। कहा जाता है कि शरीर में साढे तीन करोड़ रोम हैं। एक-एक रोम में पौने दो रोग है। कोई भी निमित्त पाकर कभी भी रोग उत्पन्न हो सकते है। साधु को भी रोग हो सकता है, तपोमय संयम साधनेवाले को भी रोग का संभव हैं। अशाता कर्म को समझने के बाद आश्चर्य पाने जैसा क्या है ? जिस प्रभु की बात कर रहे है वे श्री महावीर प्रभु को भी केवलज्ञान होने के बाद छह मास लहुमय अतिसार होने की बात शास्त्र में प्रसिद्ध है। इस काल के धन्नाजी के रूप में साधु समुदाय में प्रसिद्ध पू. पंन्यासप्रवर श्रीकांतिविजयजी महाराज जैसे महासंयमी-तपस्वी महात्मा को भी कैंसर हुआ। कर्म का उदय किसे नहीं होता है ? जब कि उत्सर्ग मार्ग में हमें चिकित्सा की अनुमति नहीं हैं, सहन ही करने के लिये कहा गया है। बाइस परिसहों में रोग परिसह बताया है। सहन करे वह साधु। ऐसी साधु की व्याख्या है। द्रव्योपचार अन्त में तो द्रव्योपचार ही है। उससे अच्छे ही हो जाय ऐसा नियम नहीं। अशाता तीव्र हो तो उपचार कुछ नहीं कर सकता, इसलिये उत्सर्ग मार्ग में तो समता रखनी, ममता को मारकर रहना ऐसा ही कहा गया है। मेरा चले तो दवा करनी ही नही। ऐसा आग्रह रखा जाय। मैं अपने परिणाम को टिका सकता हूं, समता रहे तो उपचार की जरूरत नहीं। यदि अपने आप को पता न चले तो गुरु महाराज जैसा कहें वैसा करना। कदाग्रह न करना। कारण कि कदाग्रही कभी आज्ञा पालन नहीं कर सकता। इस काल में आराधकभाव टिकाना या पाना, काफी कठिन है। ज्ञान किसी के पास नहीं, गुरु भगवंत शास्त्रों के ज्ञाता और अनुभवी हैं। उनकी आज्ञा को सर्वस्व माननेवाला भी आराधक बन सकता है। उन सब की योगक्षेम करने की जिम्मेदारी है। उत्सर्ग मार्ग में चलने की ताकत नहीं हो तो अपवाद मार्ग भी प्रभु की आज्ञा ही है। अपवाद मार्ग में उपचार कराना पड़े तो अपने सत्व को मापकर आराधक भाव को टिकाने के लक्ष्य से औषधकरना हितावहहै।

मरीची एवं आज का समाज

मरीची के शरीर में एकबार कोई रोग उत्पन्न हो गया, उठना-बैठना, चलना-फिरना कुछ भी इनसे किया नहीं जाता। उस समय दूसरे महात्मा लोग इन्हें असंयति समझकर इनके लिये कुछ भी नहीं किया करते। इनके सामने देखते या बोलते तक भी नहीं। 'कोई साधु पानी न दे' ऐसा आपने कभी सुना है? आपने क्या शोचा था?

सभा- महात्माओं में अनुकम्पा भी नहीं हो?

पूज्यश्री- साधुपना क्या चीज है वह ख्याल में आ जाय तो इस प्रश्न का अवसर ही नहीं होता, प्रभुशासन समझ में आ जाये, विरति-अविरति समझ में आवें, साधुपना का स्वरू प समझ में आवे। साधु से क्या होता - क्या नहीं होता है वह समझ में आ जाय तो काम हो जाता है। आज जिस प्रकार की प्रवृत्ति चल रही है उसे देखते ऐसा लगता है। प्रभुमार्ग की श्रद्धा रसातल में चल गयी है। जाने की साध्वाचार जानते ही नहीं इसीलिये सब चलता है।

आज तो ऐसे बोलनेवाले भी है कि समाज का खाते हैं परन्तु समाज के लिये क्या करते हैं? साधु को समाज का बोझ भी माननेवाले लोग हैं। क्यो? साधुता का ज्ञान नहीं है इसलिये। बाकी साधुता में रहे हुए साधु जो कर सकते हैं उसे कौन कर सकता? महान शिक्षाशास्त्री व दिग्गज नेता आदि जो नहीं कर सकते उसे कोने में आत्मसाधना में लीन एक सच्चा साधु कर सकता है। इसी से साधु चलती-फिरती यूनिवर्सिटी(विश्वविद्यालय)कहा जाता है सो मालूम है? मुझे तो यह पूछना है कि साधु के लिये क्या मानते हो? मरीची तो रोगी हुआ, महात्माओं के व्यवहार से इनका दिल दुखी हुआ, इन्हें ऐसा भी लगा कि मेरे ही उपदेश से साधु बने ये लोग मुझसे अनजान जैसा व्यवहार करते हैं? फिर क्षणमात्र में ही मरीची सजग हो जाते है। इन्हें अपनी स्थिति का ख्याल आ गया। वे साधुपना के पक्षधर थे। साधु असंयमी के साथ कैसा व्यवहार करता है उसे जानते थे। इसी से उन्हें लगा कि ये महात्मा तो अपनी काया से भी निरपेक्ष है मेरे जैसे असंयमी के लिये क्योंकर चिन्ता करे?

द्रव्य रोग हुआ था, उसका भी असर अपने शरीर-मन पर था लेकिन, प्रभुवचन के प्रति अविहड प्रेम था इसलिये क्षणमात्र में आये हुए दुर्विचार लम्बे समय तक नहीं टिका। सम्यक्त्व के प्रभाव से ये अन्दर से सजग थे। आज तो स्वयं का गुमान एवं शासन का अज्ञान समाज को किस दिशा में ले जा रहा है?

यद्यपि आज श्रमणसंघ को भी आत्मनिरीक्षण करना जरूरी है सो निःशंक बात है।

शुद्धमार्ग की देशना

मरीची को रोग हुआ, महात्माओं के लिये न करने लायक विचार भी मन में आया। लेकिन क्षणभर में अपनी दुःस्थिति का ख्याल आते ही मन बदला, साथ ही मन में एक ऐसा विचार आया कि 'यदि इस रोग से बाहर निकलूं तो प्रव्रज्या के लिये आये कोई एक को स्वयं दीक्षा दूँ कारण कि अकेले हाथ आपदाओं से पार उतरा नहीं जाता।' अबतक जितने आये सबको प्रतिबोधदेकर प्रभु के पास व अन्य महात्माओं के पास दीक्षा हेतु भेजा। किसी एक को भी अपना शिष्य बनाने का विचार नहीं किया। आनेवाले को ऐसा ही कहा कि कल्याण करना है तो वहां (प्रभु के पास) जाओ, मेरे सामने देखना नहीं। लेकिन इस बिमारी ने इन्हें यह विचार उत्पन्न कराया। **सुख की इच्छा या सुख के साधन की अभिलाषा पाप के उदय से जगती है। यह अविरति स्वरूप है। इसमें ग्रस्त रहने पर मिथ्यात्व उदय में आते देर नही लगती।** मरीची भवितव्यता के योग से अशाता टलते ही स्वस्थ हुआ, पहले की भांति विचरण और शुद्धमार्ग की धर्मदेशना करने लगा।

गुड खोल का एकीकरण

कपिल नामक एक राजपुत्र इनकी धर्मदेशना से प्रतिबोधपाया। यद्यपि उसे भी शुद्ध साधुपना का स्वरूप ही समझाया गया था। लेकिन उन्होंने कहा भगवन्! आप वेश अलग रखते हो। तथा बात अलग करते हो। सच्चाई क्या है? उस समय भी मरीची अपने आपको बचाव नहीं करता है। इन्हें भी दूसरे महात्मा के पास साधुपना स्वीकारने का मार्गदर्शन किया है। शिष्य की इच्छा जगने पर भी, आये हुए को हितभरी बात कहना कभी शक्य बनता है? लेकिन भवितव्यता भयंकर थी, कपिल ने पूछा 'आपके मार्ग में धर्म नहीं है?' यहाँ विषम परिस्थिति थी अपने आचरण में मार्ग ही नहीं ऐसा कहने की जगह 'कविला इत्थंपि इहयंपि' मात्र इस शब्द ने इन्हें एक कोडाकोडी संसार को बढा दिया। जिनवचन से विरुद्ध प्ररूपणा प्रमाद से भी न होना चाहिये। इसकी सावधानी रखने हेतु ऐसा कहा गया है **कि सावद्य और निरवद्य भाषा का भेद जो न समझ सके उसके लिये बोलना भी योग्य नहीं है। फिर देशना देने की बात ही कहाँ है?**

मरीची ने जिनमार्ग में भी धर्म है और यहाँ भी धर्म है ऐसा कहकर गुड व खोल दोनो को एक कर दिया।

गरमी की ताप से चारित्र से चूका, कुलमद से नीचगोत्र का उपार्जन किया और कपिल के योग से सम्यक्त्व भी गया। कपिल को अपना शिष्य बनाया। कुछ प्रकार के आचारों को सीखाकर उन्मार्ग की नयी परंपरा खड़ी की। एक भूल में से अनेक भूलों की परम्परा बँधी। भूल को भूल की तरह न पहचाना जाय तबतक जीव नई भूलों को करता ही रहता है इसमें आश्चर्य ही क्या है? मरीची ने इस भूल से बोधिभी दुर्लभ बनाया।

भवभ्रमण व विश्वभूति

कितने ही काल में आयुष्य पूर्ण होने पर मरीची रू प में तीसरा भव पूर्ण किया। ब्रह्मलोक नामक पंचम स्वर्ग में पहुँचा, देव-मनुष्य के बारह भवों के भ्रमण पश्चात् भी बोधिदुर्लभ होने से जैनशासन देखने-सुनने के लिये मिला नहीं, मिला तो अच्छा नहीं लगा। मनुष्य के भव में ब्राह्मणकुल में जन्म लिया, भोगादि का आसक्तिपूर्वक जीवन जीता हुआ त्रिदंडिक परिव्राजक का योग पाकर उनके प्रति आदर जगा, घोर तपोमय त्रिदंडिकपने मे जीया, देवमनुष्य के बारह भवों को पूरा किया, इस प्रकार पंद्रह भव हुआ, कर्मलघुता से सोलहवाँ भव राजगृह नगरी में विश्वविभूति राजकुमार के रूप में हुआ। राजा विश्वनंदी, युवराज विशाखाभूति और राजकुमार विशाखानंदी आदि की घटनाएँ अपने यहाँ प्रसिद्ध है। विश्वभूति युवराजपुत्र है। पंचम देवलोक ब्रह्मलोक से आकर चतुर्गतिक दीर्घ संसार में परिभ्रमण किया, बीच में भवबाहुल्य किया। ये बात आपसब जानते ही है। समकीत प्राप्ति पश्चात् भी प्रभु वीर की आत्मा का पंचेन्द्रिय रूप में सत्तावीस भव के अलावा छोटे-बड़े बहुसंख्य भवों में भ्रमण हुआ है। अनन्तर पूर्व भव में किये कुशलकर्म के प्रभाव से राजकुल में जन्म हुआ, युवाकाल में अनेक स्त्रियों के परिवार के साथ विविधक्रीडा करते हुए काल व्यतीत करता है। एक समय पुष्पकरंडक उद्यान में परिवार के साथ क्रीडा हेतु गया। सुख में आसक्त जीवों को सुख का संगम या संयोग मिलने के बाद क्या बाकी रहता है? एक बार महारानी कि दासियाँ पुष्प लेने बगीचे में आती हैं और अन्तःपुर सहित अनेकविधक्रीडा करते युवराजपुत्र विश्वभूति को देखकर ईर्ष्या की अग्नि मेंजली जाती है। दासियाँ तो नौकरानी हैं इन्हें तो राजपुत्र या युवराजपुत्र में क्या भेद हो? लेकिन महारानी को खुश करने के लिये शांत

सरोवर में कंकर चालने के किये हुए काम कैसे अनर्थ का सर्जन करता है ? इसीलिये कहा गया है, हे ! रे...ईर्ष्या ! तुम्हारे पाप से–

महारानी कोपभवन में

ईर्ष्या के प्रभाव से कैसा–कैसा अनर्थ हुआ है ये कहाँ गुप्त है ? स्त्रीयों में ईर्ष्या विशेष रूप से होती है। भाई–भाई बाल्यकाल से खेले–घूमे हों और घर में स्त्री आते ही क्या से क्या हो जाता है। आप सभी जानते ही हो। इस राजपरिवार में परस्पर गाढ संबंधथा। पुष्पकरंडक उद्यान में क्रीडा करते राजकुमार विश्वभूति को देखकर ईर्ष्यावश दासियों ने महारानी के पास जाकर कहा, आप तो नाम की ही महारानी हो। राज तो युवराज का चलता है। इसीलिये उद्यान में युवराजपुत्र मौज मना रहा है। आपके पुत्र को कौन भाव पूछता है ? स्त्रीस्वभावसुलभ तुच्छता के कारण कुल की मर्यादा जानते–समझते हुए भी महारानी को यह बात लग गयी। वह रुठकर कोपभवन में चली गयी। पुराने

उद्यान में पत्नी के साथ क्रीडा करते हुए विश्वभूति।

समय में कोपगृह होता था, घर का झगड़ा घर में ही रहे, बाहर कोई जाने भी नहीं इसके लिये किसी से कोई कारण बना हो तो इस भवन में आकर यहीं इसकी चर्चा होती।

राजा-रानी संवाद

राजाजी अंत:पुर पधारे, दासियों के द्वारा रानी का कोपगृह में होने की बात से अवगत हुए। राजा के कोपगृह में आने पर ही रानी खड़ी हो गयी, बैठने के लिये आसन दिया। राजा ने कोप का कारण पूछा और कहा भी कि मेरा कोई अपराधमुझे तो स्मरण में नहीं आता है। मेरे अनुसार चलनेवाले यहाँ के कोई भी अपराधकरे नहीं, कोई कमी नहीं है, फिर यह सब क्या है? कारण क्या है? रानी ने कहा कि आपकी कृपा से किसी प्रकार की कोई कमी नहीं है, लेकिन इस परिवार में मेरा क्या मूल्य? पुष्पकरंडक उद्यान में युवराजकुमार क्रीडा करे और अपना पुत्र क्रीडा न कर सके उसका अर्थ क्या है? महाराजा पूर्व परम्परा से चली आ रही व्यवस्था को याद दिलाते हुए कहा कि- एक राजकुमार उद्यान में क्रीडा कर रहा हो तो दूसरे को वहां नहीं जाना चाहिये ये अपनी परंपरा है। उसका उल्लंघन मैं कैसे कर सकता हूँ? लेकिन स्त्रीहठ आखिर किसे कहा जाता है? रानी ने कहा कि महाराज, आप अपने महल में जायें। उद्यान न मिलता हो तो मुझे कुछ भी माँगना नहीं है। आपकी उपस्थिति में मैं इतना भी नहीं पा सकती तो भविष्य की कल्पना ही क्या करनी? आक्रोश वचनों से संतप्त राजा ने कहा कि मेरा जीवन भी तुम्हारे आधीन है, दूसरा क्या कहूँ? संसार की ये कैसी विचित्रता है। महानुभावों! पृथ्वी को कँपा देनेवाले ये महारथी भी गृहक्लेश से कैसे काँप उठते है? स्त्री के पास कौन समर्थ रहा है?

मंत्रीश्वरों की योजना

राजा सभा में जाकर मंत्रियों को बुलाते है। महारानी के कोप एवं कुलव्यवस्था ज्ञात कराकर कोई बीच का मार्ग ढूँढ निकालने के लिये कहते हैं। इसके बाद मंत्रिगण रानी को समझाने की जिम्मेदारी लेते हैं। परन्तु रानी की स्त्रीहठ के सामने मंत्रियों का भी कुछ न चल सका। राजा को तो एक तरफ पत्नी की हठ और मरण की धमकी एवं दूसरी ओर कुलक्रमव्यवस्था का भंग क्या करना उसकी चिंता थी। राजा मंत्रियों को वास्तविकता बताकर बीच की राह निकालने के लिये कहते है, जिससे की दोनो की सुरक्षा हो सके। मंत्रणा करके मंत्रियों ने एक योजना का आयोजन किया। थोड़े दिन बाद राजा के पास एक

दूत आकर समाचार देता है कि 'महाराज, सीमावर्ती राजा स्वच्छंद होकर मर्यादा का उल्लंघन कर रहा हैं।' राजा यह सभी नाटक जानते थे, फिर भी कोप का आडंबर करके सेना को सावधान करते हैं। युद्धयात्रा की भेरी बजायी जाती है, प्रयाण हेतु रथारूढ होते हैं। वहाँ उद्यान में उपस्थित विश्वभूति भेरी का ध्वनि दौडते आकर पिता के बड़े बंधु ऐसे राजा का चरण चुमकर कहते हैं, तात ! मेरे होते हुए भी आप युद्ध में जाते हो ? आप मुझे आज्ञा दीजिये... कौन है वह ? मैं अभी ही उसे जीतकर आता हूँ। राजा नाटकीय दिखावा करते हुए आनाकानी करते हैं, फिर युद्ध के लिये आदेश देते हैं। यह सब मंत्रियों की योजना के अनुसार हुआ है, सबको मालूम ही था कि युद्ध की रणभेरी सुनने के बाद सच्चा क्षत्रिय बैठे रह नहीं सकता, फिर भी ऐसी योजना बनी थी। संसार में तो ऐसे कितने ही मायाचार चलते होंगे ?

विश्वभूतिने युद्ध के लिये प्रयाण किया, लेकिन सीमा के राजा तो कुमार के आगमन से खुश होकर इनके स्वागत हेतु आगे आता हैं। युद्ध बिना ही विजय पाने से विश्वभूति वापस आया, राजा को समाचार देकर उद्यान में प्रवेश के लिये पहुँचा, वहीं उद्यानरक्षकों ने उनको रोका और कहा, कुमार !

उद्यान पालक को उद्यान द्वार पर कोठा के वृक्ष से कोठा फल गिराते हुए विश्वभूति ।

आप उद्यान में प्रवेश नहीं कर सकते, क्योंकि विशाखानंदीकुमार उद्यान में हैं। यह सुनते ही विश्वभूति को आघात लगा। वह समझ गया कि मुझे हटाने के लिये ही यह चाल चली गयी थी। क्रोधसे काँपने लगा और एक मुट्ठी से कोठा के वृक्ष को मारा मारकर कोठे गिराये और सामने खड़े उद्यानरक्षकों से बोला कि इसके तरह ही तुम्हारा सिर भी तोडकर नीचे गिरा सकने में समर्थ हूँ लेकिन पिताजी की लज्जा, कुलकलंक का भय और लोकापवाद की चिन्ता मुझे मना करती है। तदनन्तर उग्रकोप शांत होने पर संवेगपूर्वक विचार करने लगा।

विश्वभूति का चिंतन

युवराजपुत्र विश्वभूति का चिन्तन कितना मार्मिक है और वास्तव में अद्भुत है। वह विचार करता है कि **'विषयाधीन जीव किन-किन अवहेलनाओं का शिकार नहीं होता ? किस दुष्कर्म को करने में वह तैयार नहीं होता ? वज्र समान आपत्ति का भोग बनता नही ? विषयासक्त जीव का विनयभंग कौन नहीं करे ? जो जीव स्त्री परांमुख हो जाय तो स्वप्न में भी दुर्गति का दुःख पाये नहीं। अहो इस विधिने महिला नामक कैसा यन्त्र बनाया है कि जो हाथी का पासबंधन, घोड़े का लगाम, पक्षी का पिंजरा, पतंगों के लिये दीपशिखा और मछली के लिये जाल की भांति बंधन रूप बनता है। जिसके मन में स्त्री का वास नहीं है उसके मन को श्रेष्ठ गंधभी क्या कर सकता है ? यौवन के अन्धकार से मेरे विवेक रू पी नेत्र बंद नही हुआ होता तो घर में ही नही रहता और इस पराभव का प्रसंग ही नही बनता, खैर, अब भूतकाल को मंथन करने से क्या लाभ ? अब भी सद्धर्म की साधना कर लूँ'** ऐसा निर्णय करके वहाँ से सीधा गुरु की खोज में निकलते ही आचार्य श्रीसंभूतिसूरि नामक गुरु का दर्शनयोग का लाभ हुआ। ये सभी विश्वभूतिकुमार के विचार का स्वयंभू ही निमित्त बनकर उत्पन्न हुआ है। वैराग्यपूर्वक गुरु के पास पहुँचता है और गुरु का दर्शन होते ही जिस दृष्टि से उसने गुरु को देखा है वह प्रभु वीर के आत्मा की महानता का द्योतक है।

भवतारक गुरु का दर्शन

अइपसत्थगुणरयणसायरो, तेयरासिना वइ दिवायरो ।
सोमयाए संपुन्नचंदओ, जो विसुद्धसुहवेल्लिकंदओ ॥१॥
मेरुसेलसिहरव्व निच्चलो संघकज्जभरवहणपच्चलो ।
सुरनरिंदपणिवयसासणो, दुट्ठकामतमपडलणासणो॥२॥
तवऽग्गिदड्ढपावओ विसुद्धभावभावओ,

सया तिगुत्तिगुत्तओ पसत्थलेसजुत्तओ ।
पयंडदंडवज्जिओ जिणिंदमग्गरंजिओ,
पणट्ठमाणकोहओ विणीयमायमोहओ ॥३॥
जणाण बोहकारओ कुतित्थिदप्पदारओ,
अपुव्वकप्परुक्खओ पणट्ठसत्तुपक्खओ ।
मुणिंदविंदवंदिओ असेसलोयनंदिओ,
अणेगछिन्नसंसओ पणट्ठसव्वदोसओ ॥४॥

तस्स एवंविहस्स गुरुणो पलोयणेण समत्थतित्थदंसणपुयपावं पियऽप्पाणं मण्णमाणो सव्वायरेण पणमिऊण चरणकमलं उवविट्ठो सन्निहियभूमिभागे, गुरुणाऽवि पारद्धा महुमहणापूरियपंचयण्णरवाणुकारिणा सरेण धम्मदेसणा। - महावीरचरियम्

अति प्रशस्त गुणरत्नों के सागर, तेज से सूर्य के समान, सौम्यता से पूर्णचंद्र जैसा, विशुद्ध सुखवल्ली का मूलरूप, मेरु के समान निश्चल, संघ के कार्य को वहन करने में समर्थ, देव और राजाओं ने अथवा देव-मनुष्य के राजाओं ने जिसकी आज्ञा को वहन किये हैं ऐसे, दुष्ट कामरूप पटल का नाशक, तपरूप अग्नि से पाप को जलानेवाले, विशुद्ध भावनाभावक, त्रिगुप्ति से गुप्त, प्रशस्त लेश्यावान् आदि अनेक गुणसंपन्न गुरु को पाकर सर्वतीर्थ के दर्शन से पवित्र हुए अपने को माननेवाला, सर्व आदर से उन्हें नमन करते हैं, गुरु के प्रति बहुमान आत्मा की गुरुता का सूचन करता है। **भवतारक गुरु के प्रति तुच्छ दृष्टि, आत्मा की तुच्छता का सूचन करती हैं। जिस काल में जो कोई संविज्ञ गीतार्थ गुरु का योग हो वे गौतमतुल्य लगे तो उनके प्रति सच्चा समर्पण सम्भव होता है तभी उनकी आज्ञा को पालन करने के लिये बल प्रकट हो सकता है। गुरु के भी दोष देखने में जो ठोस बने इनका निस्तार कौन कर सकता है ?**

तपोमय साधना और नियाणा

गुरु ने धर्मदेशना दी, संवेग का अतिशयपूर्वक दीक्षा स्वीकारकर वह विश्वभूति अनगार बने, ग्रहण-आसेवन शिक्षा पाकर आराधना में लग गये। राजा दीक्षा का समाचार पाते ही शोकमग्न होकर युवराज आदि परिवार सहित मिलने आये, वन्दनादि करके उपालम्भपूर्वक अपनी व्यथा प्रकट की ।महात्मा

ने खूब उपशांतभाव से यथोचित कहा। अन्तत: राजा अपने स्थान पर वापस आये। विश्वभूति अनगार ने साधुधर्म का अच्छा अभ्यास करके, गुरुसुश्रूषा में परायण रहकर प्रमादादि के विजेता बनकर सूत्रार्थ के ज्ञाता बनें, गुरु ने एकाकी विहार की आज्ञा देकर विहार कराया। तप-संयम में मग्न रहकर विचरण करने लगे, आतापना, तप और स्वाध्याय में मग्न रहकर प्रमादशत्रु को जीतने की भावना में आरूढ हुए और मासक्षमण के पारणे में मासक्षमण करने लगे। एक समय मथुरानगरी में आकर उद्यान में रहा करते थे। वहाँ उपस्थित अन्य महात्मा इनकी समतामय साधना से प्रसन्न होते रहे हैं। मासक्षमण के पारणा हेतु मध्याह्नकाल में स्वाध्यायादि करके गोचरी हेतु स्वयं जाते हैं। समिति का पालनपूर्वक छोटे-बड़े सबके घर भेदरहित होकर निर्दोषचर्या से जीनेवाले इस महात्मा को मार्ग में आती एक गायने लपेट लिये और तप से खिन्न शरीर होने के कारण गिर पड़े। उस समय समीप के महल में रहे तथा विवाह निमित्त वहाँ आये विशाखानंदी के लोगों ने इन्हें देखें एवं विशाखानंदी से यह बात की। हास्यमजाक के साथ उन्होंने महात्मा को कहा 'कहां गया तुम्हारी मुट्ठी से कोठावृक्ष को गिरानेवाला बल ? समतापूर्वक विचरण करते महात्मा की समता उनके शब्दबाण से नष्ट हो गयी। रास्ता में जाते समय अनजान मनुष्य का आक्रोश सहन करना सरल है, लेकिन अपने गिने जाते व्यक्ति द्वारा कही गयी एक बात कभी भारी पड़ जाती है। समिति गुप्ति के साधक और महायतनावंत महात्मा को यह शब्दोने चक्कर में फँसा दिया, आवेशवश गाय की सींग पकड़कर घुमाते हुए आकाश में उछाल दिया। जीवमात्र के मित्र महात्मा इतने शब्दों से कैसे घायल हुए होंगे। इतने के बाद भी वे न रुककर 'मेरे तप-संयम में कोई फल हो तो मैं अतुल बलशाली बनूँ,' ऐसा अनपेक्षित नियाणा कर दिया। आहार के लिये बाहर आने पर ही मेरा अपमान हुआ, बस, अब नहीं चाहिये आहार-पानी। ऐसा निर्णयपूर्वक आजीवन आहारपानी का त्याग किया। उद्यान में वापस आये, लेकिन वे कदम दर कदम बदलते गये। सभी महात्मा समझ गये, सभी ने इनके पाँव पड़कर विनती की आप ऐसा करेंगे तो समता कैसे टिकेगी ? लेकिन अब कोई भी बात कान में आती नहीं हैं। कषाय की गुलामी कैसी बूरी है ? प्रभु महावीर की आत्मा की भी कर्म ये दशा करें तो अपने जैसों की क्या कीमत होगी ? विषय कषाय से कितना सावधान रहना आवश्यक है उसे समझा जाता है ? सभी महात्मा हताश-

निराश हो गये, ऐसे ही ऐसे आलोचना प्रतिक्रमण किये विना ही आयुष्य पूर्ण किया, घोर पराक्रमी तपोमय संयम पालने के बाद भी कषाय-नियाणावश सम्यक्त्व गँवा दिया था। तप-संयम के प्रभाव से महाशुक्र नामक देवलोक में देव हुए। अब अठारहवें भव की बात देखते हैं।

विषम-विष समान विषय

भरतक्षेत्र के पोतनपुर का राजा रिपुप्रतिशत्रु की अग्रमहिषी भद्रा ने चार स्वप्नसूचित अचल नामक पुत्र को जन्म दिया, फिर सर्वांगसुंदर मृगावती पुत्री को भी जन्म दिया। पतिगृह में भेजने लायक पुत्री के रूप-यौवन से पिता स्वयं मोहित हुआ, राजसभा और प्रजा की आँखों में धूल रखकर, दंभपूर्वक बात के द्वारा सम्मति लेकर पुत्री के साथ विवाह किया, तब से प्रजा का पति रूप में राजा का प्रजापति ऐसा नाम जगप्रसिद्ध हुआ। विषयों की विषज्वाला कितनी भयंकर है? पिता स्वयं पुत्री पर कामुक बनें, रक्षक भक्षक बनें वहाँ फरियाद-शिकायत किसे करनी? रूठी हुई माता अन्यत्र चली गयी। प्रजा ने भी फिटकार सुनायी, किन्तु राजा की आँखें नहीं खुली... सचमुच, ज्ञानियों ने

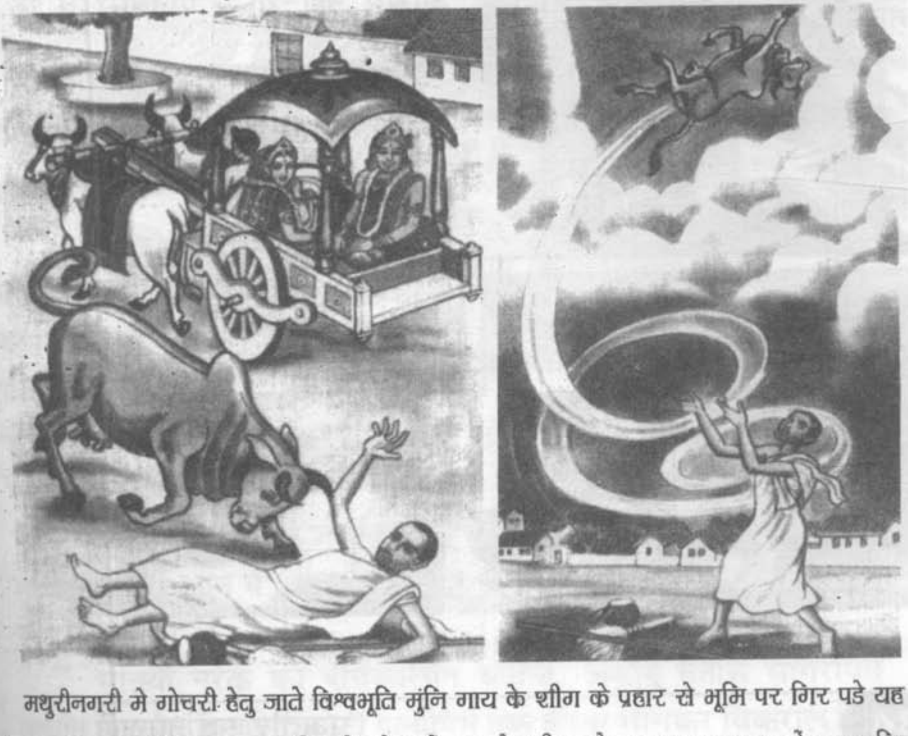

मथुरीनगरी मे गोचरी हेतु जाते विश्वभूति मुंनि गाय के शीग के प्रहार से भूमि पर गिर पडे यह देखकर विशाखानंदी का हास्य, मुनि क्रोधावेश में, गायके शीग को पकडकर आकाश में उछाल दिया।

विषयों को जहर की उपमा दी है वह कितनी सच्ची है। विषम विष रूप में ख्यात इस विषय का परिणामदारुणता कहां गुप्त है। विष तो मारता भी है और नहीं भी मारता है, मारे तो एक भव में एक ही बार परन्तु जब कि विषयों तो भव की परंपरा को बर्बाद कर जीव का सब जलाकर खाक कर देता है। कैसा यह करुण प्रसंग है, एक बाप जैसा बाप पुत्रीकामुक हो, न उसे पत्नी ऐसी महारानी की लज्जा आई, अपने युवापुत्र अचल जैसा विनम्र पुत्र से भी नहीं लजवाया और प्रजा की भी चिंता नहीं की।

त्रिपृष्ठ वासुदेव

अब पुत्री मृगावती, महाराणी मृगावती रूप में माता की सौत बनी राजा इसके रू प में और भोग में आसक्त हुआ। कालक्रमानुसार श्रीविश्वभूतिदेव की आत्मा सात स्वप्न से सूचित पुत्ररूप में पूर्वजन्म में किया हुआ 'मैं अतुलबली बनूँ।' नियाणा के फलस्वरूप मृगावती की कुक्षि में आया, योग्य समय में जन्म होते त्रिपृष्ठ नाम रखा गया वासुदेव बनने का कर्म लेकर आने से बाल्यकाल से ही अमुक प्रकार की क्रूरता पराक्रमशीलता हो इसमें आश्चर्य नहीं था। प्रतिवासुदेव के

सिंह को फाडते हुए त्रिपृष्ठ वासुदेव।

आदेश से चावल के खेत की रखवाली के लिये पिता के स्थान पर जाकर सिंह को फाड़ने का कृत्य, वासुदेवपना के मद में मस्त होकर संगीतकार के कान में तपाया हुआ सीसा डालने का कार्य और अन्य भी कितने ही अनेक करुण कृत्य करने लगे, विचरण करते प्रभु श्रीश्रेयांसनाथ दादा के समवसरण में गंवाया हुआ समकीत फिर से पाया फिर गँवाया और सातवें नरक की रौरव वेदना होने का जो ललाट में लिखा गया था वह होकर ही रहा।

पतन और उत्थान

इस भरतक्षेत्र में प्रथम वासुदेव रूप में गौरव मिला, लेकिन मद करने से नीच गोत्र बँधाया था। उसी के आंशिक विपाक रूप में बहन को माता बनाकर उनकी कुक्षी में उत्पन्न होने का प्रसंग बना, ढेर सारे कुकर्मों को करके श्रेष्ठ मानव जन्म को नरक का अतिथि होने का कारण बनाया।

शय्यापालक के कान में शीशा डालते हुए।

श्री तीर्थंकरदेव की आत्मा को भी कर्म छोड़ता नहीं, तो दूसरे की क्या मज़ाल ? कर्म की सत्ता प्रामाणिक सत्ता है, राजा या रंक, शेठ या शठ, नौकर या मालिक किसी के लिये कोई भेदभाव नहीं। प्रभु महावीरदेव की आत्मा भी भान भूल जाये तो उसे भी नरक में भेजे, तीर्यंच के भव में भी ले जाय, जो कि अवश्यंभावी को कोई अन्यथा करता नहीं, लेकिन महान आत्माएँ अन्त में अपना मूल स्वरूप को पाने के लिये पुरुषार्थ करके फल पाते ही है।

सातवीं नरक की दीर्घकालीन यातना, अर्थात् तैतीस सागरोपम अर्थात् तीनसौ तीस कोटाकोटी पल्योपम तक वेदना भोगकर विकराल सिंह

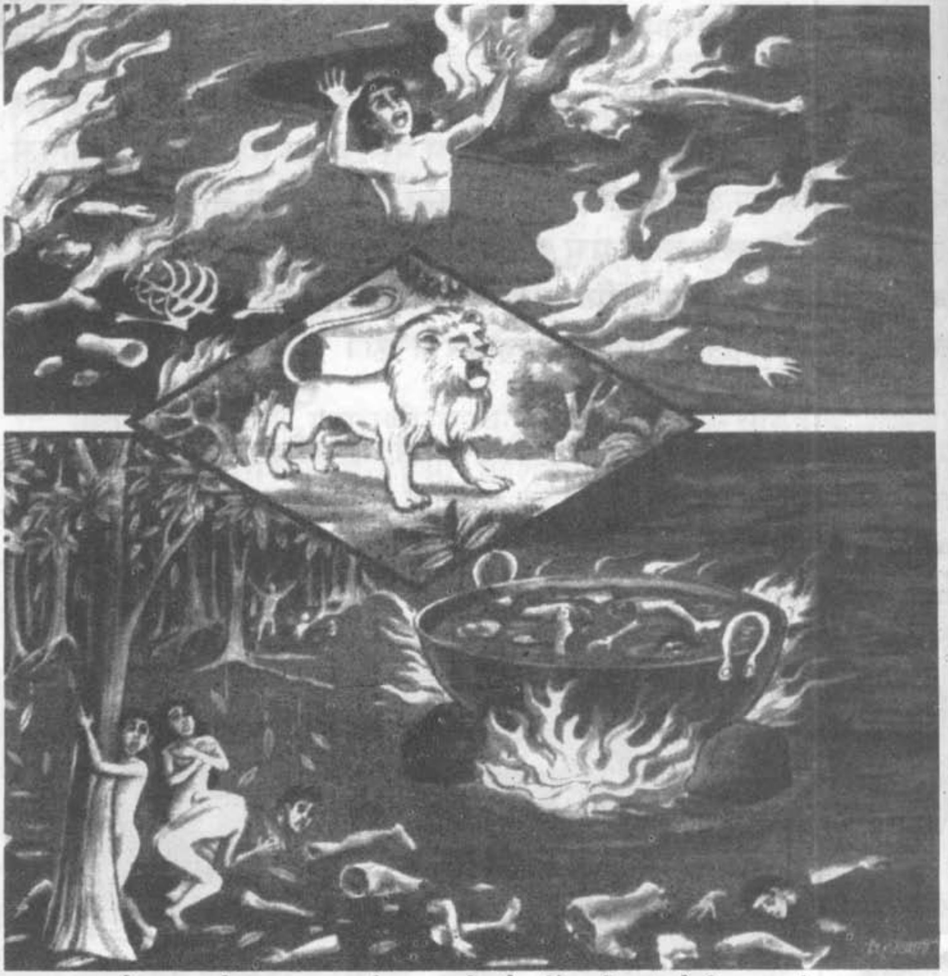

वीर प्रभु की आत्मा सातवी नरक में और सिंह में एवं चौथी नरक में ।

का भव फिर चौथी नरक का भव पाकर अगनित भव पर्यन्त संसार में वह परम तारक की आत्मा ने परिभ्रमण किया । भव में भटकते और अनेक प्रकार के दुःखों को सहन करते उपार्जित कर्म क्षीण होते हैं । कर्मलघुता फिर वापस जीव को ऊपर आने का निमित्त प्रदान करती है । तदनुसार प्रभु की आत्मा भी कर्मलघुता से मानवजन्म पाती है और शुभ कर्म के प्रभाव से महाविदेह की मूकापुरी में राजा धनंजय और रानी धारिणी के पुत्र रूप में चक्रवर्तीसूचक चौदह स्वप्न सहित जन्म धारण करती है । प्रियमित्र कुमार पिता द्वारा दीक्षा स्वीकारने पर प्रदत्त राज्य का पालन करते हुए छह खंड की साधना कर चक्रवर्ती का महाभिषेक को प्राप्त करता है । चक्रवर्ती के रू प में विशाल ऋद्धि

का उपभोगकर एक समय महल के अगले भाग से लगे मेघाडंबर को देखने पर वैराग्य पाते हैं। पुत्र को राजगद्दी पर बैठाकर दीक्षा स्वीकार करते हैं। एक करोडवर्ष तक निर्मल चारित्र पालन करके शुक्र नामक सातवें देवलोक में देव रू प में अवतार पाते हैं। इस प्रकार समकीत पाने से लेकर श्रीवीरविभु के चौबीस भवों की बात अति संक्षेप में हम सब ने देखी, अब पचीसवाँ नंदनराजऋषि के भव की रोचक बातें देखनी हैं।

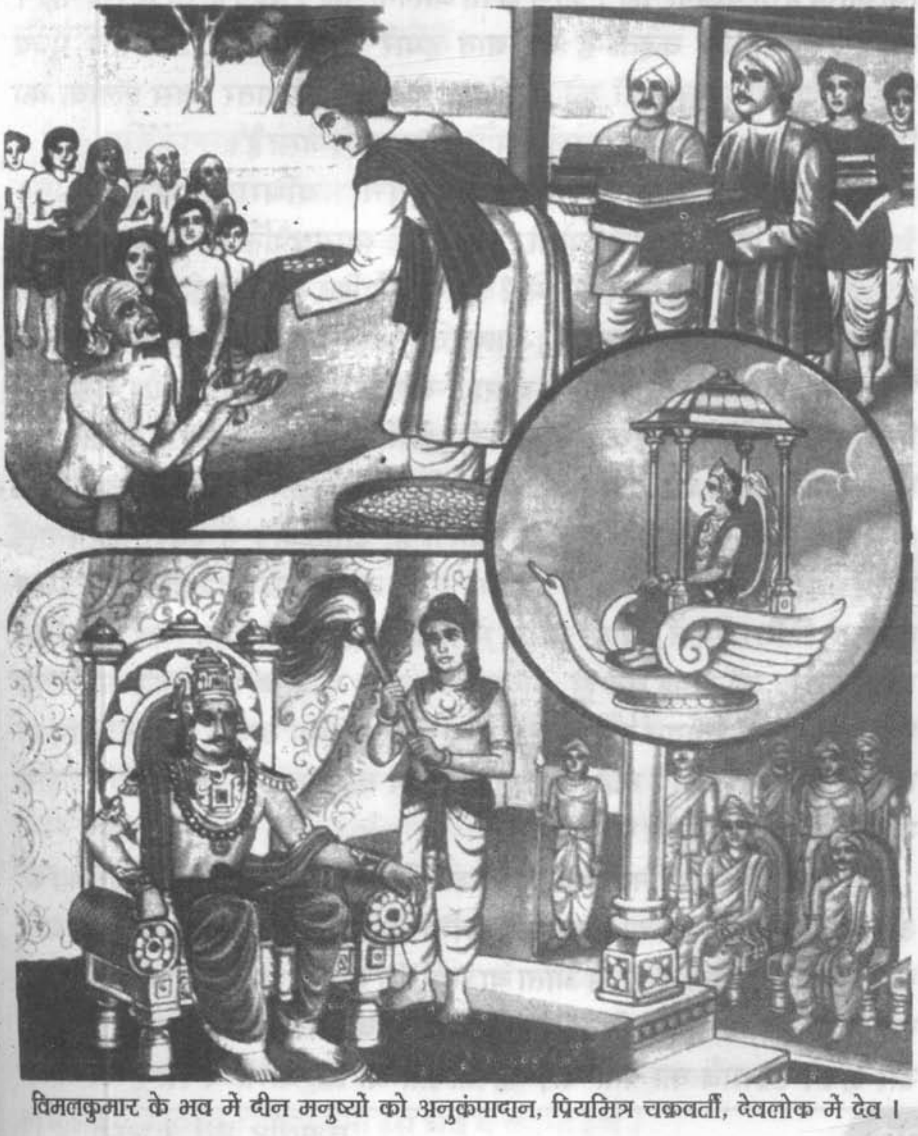

विमलकुमार के भव में दीन मनुष्यों को अनुकंपादान, प्रियमित्र चक्रवर्ती, देवलोक में देव।

समत्वयोग की साधना के लिये प्राप्त जन्म को बड़े पैमाने पर लोग जब बरबाद करते होते हैं तब चक्रवर्ती के रूप में भोगऋद्धि पाकर भी प्रभु महावीरदेव की आत्मा ने जो सफर की है उसे क्या वर्णन किया जा सकता है? एकेन्द्रियादि भवों में तो सामग्री ही नहीं थी और गुंगा-बहरा रहे हैं, किन्तु सभी इन्द्रियों की पटुता हो तब, उसका समुचित उपयोग सिवाय मौन आदि यदि न सेवन किया जाय तो समत्वयोग कहाँ से साधा जायेगा? आप लोग तो मानते है कि आँख है तो देखना नहीं? जीभ हो तो बोलना नहीं? कान हो तो सुनना नहीं? लेकिन शास्त्र जो कहता है वह बात हमारे ध्यान में हैं? स्वर्गीय पूज्य परमगुरुदेवश्री महात्माओं को हितशिक्षा देते हुए ज्यादातर जिस श्लोक का विशेष उपयोग करते थे उसे भली-भाँति याद रखने जैसा है।

आत्मप्रवृत्तावतिजागरूकः परप्रवृत्तौ बधिरान्धमूकः ।
सदा चिदानन्दपदोपयोगी, लोकोत्तरं साम्यमुपैति योगी ॥१॥

क्या कहा है इस श्लोक में? आत्मा को हित करनेवाली प्रत्येक प्रवृत्ति में सदा जगे रहने के लिये कहा है, आत्मा को अहित करनेवाली जितनी-जितनी प्रवृत्तियाँ है उसे सुनने के लिये बहरा, बोलने के लिये गुंगा और देखने के लिये अन्धा होने के लिये कहा है, अपनी है वैसी तैयारी? आवेश में आकर कुछ बोलना नहीं इतना भी निर्णय करना है? प्रियमित्र चक्रवर्ती की बात कर आये अब नन्दनराज ऋषि की बात आनेवाली है, आत्मज्ञान में रमण करनेवाले महानुभाव जो लोकोत्तर साम्य को पाते है वह अपने जैसे का काम है? आवेश करने के निमित्त मिले तब भी समता में रहना है वह याद है? हम स्वंयं बड़े हो या वरिष्ठ व्यक्ति की जगह बैठे हो, अवसर आने पर दो शब्द किसीको कहना भी पड़े, लेकिन व्यक्तिगत स्वार्थ और दुर्भाव रखे बिना अपनी समक्ष उपस्थित व्यक्ति के हित के लिये कहें तो किन शब्दों में कहा जाय? समता से जो जीये उसका संसार भी अच्छा चलता है।

एक मील मालिक का प्रसंग स्वर्गीय परम गुरुदेवश्री के श्रीमुख से अनेकबार सुना है, उसका स्वभाव कुछ विचित्र था और उसे इसका ख्याल था। कोई कर्मचारी मील में देर से आता या सही ढंग से नहीं चलता तो सीधी छड़ी ही जमा देता, लेकिन जिस दिन जिसको मारे उसका वेतन बढा देता था, क्यों? उसे अपने स्वभाव का पता था, वह जानता था कि कभी ये लोग सब मील

जायेंगे तो अनर्थ करेंगे, इससे अचानक ही वेतन बढा दिया जाता था। अतः लोक मार खाकर भी सीधे चलते थे। एक संसार चलाने के लिये इतनी होशियारी चाहिये तो अध्यात्ममार्ग में चलने के लिये कैसा होना पड़े ? समत्वयोग बिना मेहनत आयेगा क्या ? शासन के धुरंधर आचार्यादि को गच्छ संचालन या कि शासन की रक्षा के लिये क्या-क्या करना पड़ता है ? लेकिन वह कब सफल होता है, जब समत्वयोग का लक्ष्य निश्चित होता है तब न ? आज श्री नंदनराजकुमार की बात चलानी है।

नंदन नामक राजकुमार

छत्रिकानगरी के जितशत्रु नामक राजा के यहाँ भद्रादेवी की कुक्षी से जन्म पाकर चक्रवर्ती की आत्मा राजकुमार के रूप में अवतार पाया, इनका नाम नंदन रखा गया, भूतकाल की आराधना का बल साथ में है, ढेर सारे कर्म हल्के हो गये हैं, मोक्ष समीप होने पर आत्मद्रव्य विशुद्ध बना हुआ है। चौबीस लाख वर्ष गृहवास में निर्लेपभाव से रहे हुए हैं। निर्मल सम्यग्दर्शन के प्रभाव से राजवैभव को भोगते-भोगते चारित्र मोहनीय कर्म खपाया है।

पुण्ययोग से सुख-वैभव-राजऋद्धि प्राप्त हों तो ज्ञानियों को ईर्ष्या नहीं है, लेकिन उसमें अनुरक्त होकर जीनेवाले को ज्ञानीजन दयापात्र गिनते हैं। निर्लेप भाव से जीनेवाले को यहाँ अनुमोदना ही है। पापानुबंधी पुण्योदयवाले अच्छे खासे जीवों तो संसार में भटकने के लिये कमी हुई कर्म की लकडियों को एकत्रित करने के लिये ही अच्छे जन्म में और अच्छी सामग्री में आते हैं वे सभी दया के पात्र गिने जाते हैं।

राजकुमार नन्दन तो श्रेष्ठ साधनाएँ पूरी करके आया हुआ जीव हैं, उन्हें ये राजभोग ऋद्धि-समृद्धि कुछ नहीं कर सकती। राजवैभव का त्याग करके संयम का स्वीकार करते हैं। शास्त्र में साधुपना की जहाँ-जहाँ बात आती है वहां लिखते हैं, 'संयम स्वीकारा, तपोमय साधना करने लगा, लहु-मांस सुख गया, इतने-इतने आगमादि शास्त्रों का पारगामी बने आदि' श्रीनन्दनराजर्षि भी इसी प्रकार श्रेष्ठ साधुता को चढते परिणाम में आराधना करने लगे है, ग्यारह अंगसूत्रों के पाठी बने, काया की माया छोड़ दी व माया की छाया छोड़ दी है, चित्त की परिणति को विशुद्ध बनाते ही रहे हैं, अब तो यह पच्चीसवाँ भव है न ? तीर्थंकर नामकर्म की नीकाचना इस भव में करनी है न ?

तीर्थंकर नामकर्म की निकाचना

तीर्थंकर बननेवाली आत्माएँ तीर्थंकर रूप अन्तिम भव से पूर्व के तीसरे भव में तीर्थंकर नामकर्म की निकाचना करती हैं, तीर्थंकर नामकर्म एक ऐसा कर्म है जो मेहनत करके प्राप्त करने जैसा माना गया है, समकीत की उपस्थिति के अलावा वह बँधता नहीं है और तीर्थंकर की आत्मा के सिवाय कोई उसकी निकाचना कर सकते नहीं। दीक्षाग्रहणदिन से एक लाख वर्ष के चारित्र पर्याय में ग्यारह लाख अस्सी हजार छहसौ पैंतालीस मासक्षमण के जब्बर तप के साथ 'जो होवे मुज शक्ति इसी, सवी जीव करुं शासन रसी' इस प्रकार की दृढ एवं उदात्त भावना के बल से परार्थकरण आदि मूलभूत संचित हुए गुणों के प्रकटीकरण पूर्वक श्रीनंदनराजर्षि ने तीर्थंकर नामकर्म की निकाचना की। जिसमें श्रीअरिहंत आदि बीसस्थानको की विशिष्ट प्रकार की ये परम तारक के आत्माने साधना की है। शत्रु-मित्र सभी जीवों में पराकाष्ठा की समभावना के प्रभाव से जीवमात्र का एकमात्र सच्चे हित की भावना के प्रभाव से तीर्थंकर नामकर्म निकाचित होती है।

बीसस्थानक किस प्रकार करते हैं ?

आज बीसस्थानक की आराधना चारों प्रकार के श्रीसंघ में बड़े पैमाने पर होती हैं, उपवास कर लें, माला फिर लें लेकिन अपने भाव का ठिकाना है? स्वार्थ के फंदे से न निकलनेवाले परार्थकरण की पराकाष्ठा को कैसे प्राप्त कर सकते ? एक-एक पद की आराधना श्रीनंदनराजर्षि ने की है, उसका वर्णन ग्रन्थकार ने जो किया है वह अद्भुत है। तीर्थंकर बननेवाले इन महात्माओं की आराधना को संपूर्ण रू प से भला कौन वर्णन कर सकता है ? अरिहंतपद के आराधक अपने लोगों को अरिहंत की आज्ञा सर्वस्व लगती है ? सुख से भी हरा-भरा यह संसार रहने लायक नहीं है यह बात आराधक के हृदय में सुस्थिर है ? अरिहंतपना पाने के लिये अरिहंत को भजते हो ? अरिहन्त कब हुआ जाय ? सिद्धपद की आराधना करते हुए सिद्धपना का लक्ष्य निश्चय कर लिया है ? उन-उन पदों की आराधना करनी श्रेष्ठ है लेकिन अपने हृदय भाव को दमन करना पड़ेगा न ? स्वार्थपरायणता में से परार्थपरायण बनने का प्रयास जारी है ? ये अनादि के दोष को टालना मुश्किल है। उपयुक्त जीवों के लिये अधिक पुरुषार्थ से साध्य है । अपनी आत्मा दोषों का समंदर है इसे सुन्दर गुणों का सरोवर बनाना है । कहा जाता है कि गद्धा शक्कर खाता है तो उसे ज्वर आ जाता है,

अयोग्य जीव अच्छी वस्तु को पाकर भी भटकता है। हम लोग आराधना करने के बाद भी आराधकभाव जीवंत न बनाकर रखें तो भटकना पड़ेगा । श्रीनंदनराजर्षि ने अनादि संस्कारों के सामने कड़ी नजर रखकर काया पर कठोर बने, कर्म पर क्रूर बने और जीवमात्र पर कारुणिक बने । जिसके परिणाम से प्राप्त करने योग्य को प्राप्त करना ऐसी अद्भुत भूमिका तैयार हो गयी । इनकी जीवन आराधना और अन्तिम आराधना शास्त्र के पन्नों पर वर्णित है। वे हमसब के लिये आदर्श रूप हैं । कलिकाल सर्वज्ञ आचार्य भगवंतने त्रिषष्ठिशलाकापुरुषचरित्र में जिन श्लोकों को रखे है उसे कण्ठस्थ करके बारंबार मन्थन करने जैसे है।

संयमसाधक श्रीनंदन राजर्षि ।

आज्ञा: प्रभुजी की या मोह की ?

श्रीनंदनराजर्षि एक लाख वर्ष का निर्मल चारित्र पालनकर, पच्चीसलाख वर्ष के आयुष्य के अन्त में दसवें प्राणत देवलोक में देवरूप में उत्पन्न होते हैं, निर्मल सम्यक्त्व और वैराग्य की परिणति के बल से दैवी सुखों में विरक्त रहकर शाश्वततीर्थों की भक्ति, श्रीतीर्थंकरदेवों के कल्याणकों का

उत्सव, महात्माओं की भक्ति, धर्मात्माओं का अभिवादन आदि के द्वारा मोह को चूर-चूर करने की मेहनत करते हुए काल व्यतीत कर रहे हैं। कर्म को किसी की शर्म नहीं है। जो काल निश्चय करके आया है उसे पूरा करना ही पड़े बीस सागरोपम का आयुष्य है, प्रभु आज्ञा का आराधक होकर आये हैं इसलिये मोह सीधा चलता है। मोह की आज्ञा मानने का अभ्यास तो है ही, लेकिन परमेश्वर की आज्ञा याद आती है? आज हम सब मोह की आज्ञा में या भगवान की आज्ञा में? मोहराजा से पूछकर करते हो या कि प्रभु की आज्ञा के अनुसार जीने की मेहनत करते हो। मोहराजा निपुण राज्यकर्ता है, वह जीव का स्वभाव जानता

देवलोक में उत्पन्न हुए नंदनऋषि।

है, वह कहता है कि तुम्हें जो करना है सो करो परन्तु मुझसे पूछकर करो, तप, जप-संयम सभी करे लेकिन उसकी आज्ञा में रहकर करो। अपनी क्या हालत है? प्रभु का शासन जिसके हृदय में स्थिर हो जाय वह प्रभु की आज्ञा का पालन कर सकता है। आज धर्म करनेवाले कहेंगे कि भले खर्च लगे किन्तु अच्छा लगे वैसा करना। सत्य बोलो, अच्छा लगे वह करना कि अच्छा हो वह करना? ये सभी विचार कौन कराते हैं? ऐसा लगता है कि ये सभी मोह राजा की करामत है।

हमारे यहां दीक्षा लेने हेतु आनेवालों की तीन प्रकार की परीक्षा बतायी है। प्रश्नपरीक्षा में पूछना पड़ता है कि किसलिये दीक्षा लेनी है? वह जबाब

सवि-सही देता है तो कथापरीक्षा में पूरा आचारधर्म कड़ी पद्धति से बताया जाता है, साथ ही साथ उससे महान लाभ का भी वर्णन किया जाता है। इसके बाद परिचय परीक्षा फिर दीक्षा देने की बात, आज्ञा पालन की तैयारी हो तभी संसार तैरा जायेगा न ? श्रीनंदनराजर्षि तो आज्ञा के वफादार होकर जीये। जबरदस्त साधना की, अब तो जगदुद्धारक बननेवाले है। छब्बीसवाँ भव देवलोक का पूर्ण होते ही वे परम तारक की आत्मा देवाधिदेव के रूप में अवतार पानेवाली हैं, सताइसवें भव में भगवान महावीरदेव के जीवन संबंधी बातें आयेंगी, खास तो उपसर्गों की एवं संगमदेव द्वारा एक रात में बीस उपसर्ग की बात करने की अपनी इच्छा है।

कल्पसूत्र की कथा

संसार कें भव्यलोगोंका उंचे में उंचा आलंबन अर्थात् जैनशासन 'प्रधानं सर्वधर्माणां'कहकर अपने सभी उसके यशोगान करते हैं। उसके स्थापक श्रीअरिहंतदेव हैं। भगवान महावीरदेव इस अवसर्पिणी के अंतिम तीर्थपति हैं। उनके छब्बीस भव सुनने के बाद अब सत्ताइसवें भव की बात शुरु करते हैं। नन्दनराज ऋषि के भव में उपार्जित तीर्थंकर नामकर्म के साथ दसवें प्राणत देवलोक में जाकर वहां के आयुष्य को पूर्णकर, वे परमतारक की आत्मा आषाढ शुक्ल षष्ठी को च्यवन पाती हैं। मरीची के भव में उपार्जित

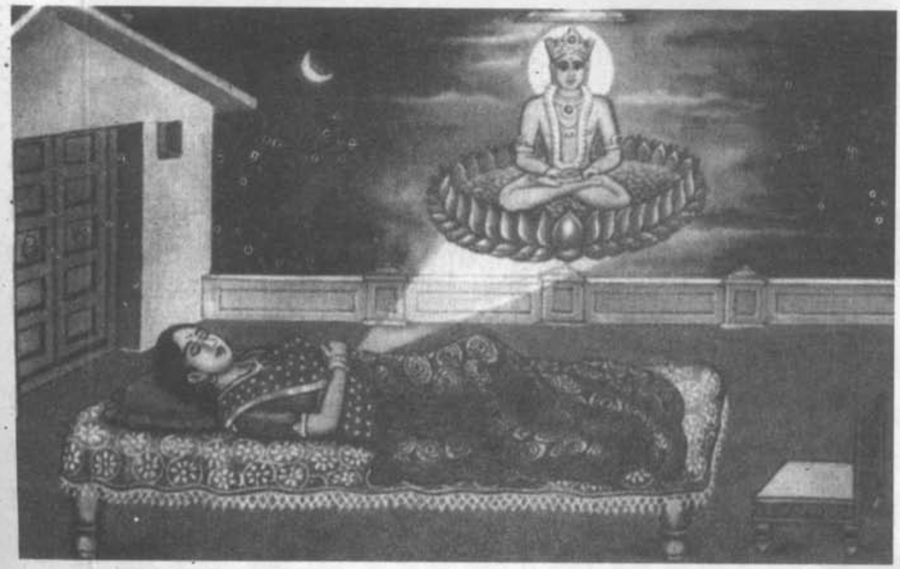

प्रभु का च्यवन कल्याणक।

नीचगोत्र नाम कर्म का अंश बाकी होने से भवितव्यतावश जगदुद्धारकर परमात्मा को भी भिक्षाचर कहा जाय ऐसे ब्राह्मण कुल में ऋषभदत्त के यहाँ देवानंदा नामक महासती की कुक्षि में अवतार लेना पड़ता है। कर्म किसी को छोड़ता नहीं है। चौदह स्वप्नों का आना, अपने पति को बताना, यथामति से फलादेश करना, आश्चर्यचकित होना आदि घटनाएँ बनी हैं।

सिंहासन कम्पन से अवधिज्ञान का उपयोग करने के पर इन्द्र महाराजा ने हरणैगमेषीदेव के द्वारा गर्भापहार कराया। क्षत्रियकुंडग्राम नगर के अधिनायक

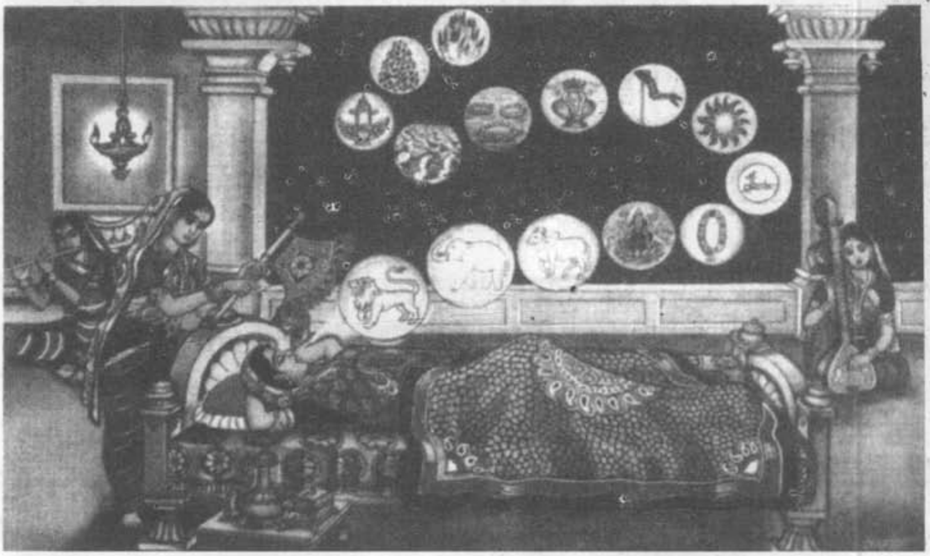

महाराणी त्रिशलामाता के द्वारा देखे गये चौदह स्वप्न।

ज्ञातकुल के सिद्धार्थ क्षत्रिय राजा की पटरानी महादेवी त्रिशला की कुक्षि में प्रभु को स्थापित किया। बियासी दिनों का बाकी कर्म पूर्ण होते, श्रीत्रिशलादेवी की कुक्षि में प्रभु पधारे। देवानंदाने स्वप्न वापिस जाता है ऐसा देखा। यह बात जानकर ऋषभदत्त ब्राह्मण ने कहा कि आज मेरा आश्चर्य का कारण हल हुआ। अपने यहाँ ऐसा अमूल्य रत्न कहाँ से संभव है? त्रिशलादेवी ने स्वप्न देखा। इसकी जानकारी सिद्धार्थ महाराजा को दी। यथामति विचारकर फलकथन किया। प्रातःकाल में स्वप्न शास्त्रज्ञों से फलादेश जाना। ये सभी बातें तुम लोग हर वर्ष कल्पसूत्र में सुनते आये हैं। इन सबकी जीवनपद्धति कैसी अनुपम है? भोग भूतावल जैसे लगे व विषयों की विषमता समझ में आ

जाय तो जीवन उत्तम दर्जे का बनें, और ऐसे आचार सहज ही सिद्ध होते हैं।

जगन्नाथ को भी कर्म उंधे मस्तक नौ-नौ महिने तक लटकाता है। जहाँ तक कर्म विद्यमान है वहाँ तक समर्थ जीवकी भी कैसी दशा है? जनसामान्य की तरह हि यह परमतारक का जन्म होता है। यूँ की तारक तीर्थंकर देवो का अचिन्त्य प्रभाव रहता है। गर्भकाल में प्रभुजी को लेशमात्र पीडा होती नहीं है, निर्मल तीन-तीन ज्ञान होते है। प्रभुजी के प्रभाव से माताजी को भी जन्म समय की (प्रसूति) पीडा होती नहीं है। माता की भक्ति के लिए प्रभु गर्भ में स्थिर रहे, इससे माता को पीडा हुई, यह जानकर प्रभु एक अंग से हलन-चलन करते है।

प्रभु का गर्भहरण।

प्रभुने ज्ञान से भविष्य जानकर गर्भमें ही माता-पिता की विद्यमानता तथा दीक्षा न लेने का अभिग्रह लिया यह बात आपके ध्यान में होगी। तब विचार किया था?

जन्म होते ही त्रिभुवन में प्रकाश छाया, नारकी के जीव भी सुख की अनुभूति करने लगे यह सब वह तारक का प्रभाव था। इन्द्र सिंहासन का कल्पन, चार-चार हजार के परिवार सह छप्पन दिक्कुमारिकाओ सूतीकर्म करना, मेरु महोत्सव द्वारा इन्द्र अपूर्व भक्ति करते है। प्रभु के दर्शन मात्र से भावविभोर होकर देवलोक को तुच्छ मानना और प्रभु के हि प्रभाव से पृथ्वी

छप्पन दिग्कुमारियो द्वारा भव्य जन्म महोत्सव ।

को पवित्र माननी, यह सब किस बात का सूचन देते है? निर्मलसम्यकत्त्वधारक देवगण का यह शाश्वतिक आचार है।

प्रातःकाल होते राजा भी अद्भुत जन्मोत्सव मनाते है। कुलमर्यादा का पालन व 'वर्धमान' एसा गुणनिष्पन्न नामकरण, यह सब आप जानते ही हो।

आर-पार की लडाई का भव

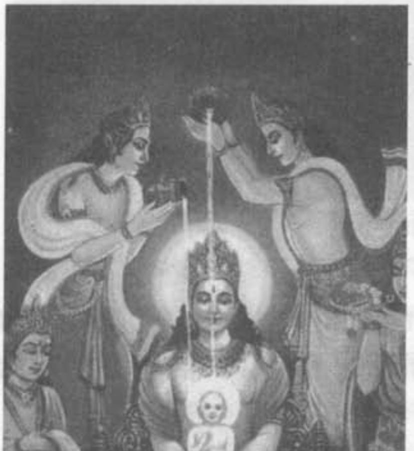

मेरुपर्वत पर सौधर्मेन्द्र आदि ईन्द्रो द्वारा प्रभुका जन्माभिषेक महोत्सव।

श्री तीर्थंकर परमात्मा का अंतिम भव माने कर्मके प्रतिपक्ष में आर-पार की लडाई का भव । प्रभु का बाल्यकाल, शालागमन, युवावस्था में पाणिग्रहण आदि सब कर्म को वह जो रीत से मानते है यह सब प्रवृत्ति करते है।

बाल्यकाल से कुतुहलवृत्ति से मुक्त निर्मल सम्यग्द्रष्टि, तीन-तीन ज्ञान को धारक व ज्ञानगर्भित वैराग्य के स्वामी प्रभु को पुद्गल भाव की कोई चेष्टा में अंश मात्र भी मझा नहीं थी। श्री तीर्थंकरदेवो के लोकोत्तर जीवन की समकक्षता कहाँ भी नहीं है।

वर्धमानकुमार का पाठशाला में अभ्यासार्थ गमन सौधर्मेन्द्र महाराज का ब्राह्मण वेशमें आगमन ।

जन्म समय से ही पिता प्रसेनजित राजवी को दुश्मन राजाओ से यश प्राप्त करानेवाली होंने से जिसका यशोदा नाम रखा गया था इनके साथ आगे जाते प्रभु का पाणिग्रहण हुआ, तत्पश्चात् भी प्रभु का निर्लेप भाव का वर्णन कौन से शब्दोमें किया जाय !

ऐसे माता-पिता के अरमानो के साथ प्रभुजी के २८ वर्ष पूर्ण होते माता-पिता परलोक सिधा गये । गर्भ में कि हूई प्रतिज्ञा की पूर्ति होते हि बडेभाई नन्दिवर्धनराजा के पास दिक्षा के लिए अनुमति प्रभुने माँगी । तब भाई ने कहा बंधो ! फिलहाल हि मातापिता का वियोग हुआ है । उस समय आपकी दिक्षा की बात घाव पर नमक जैसी लगती है । आपका दर्शन हमें अतिप्रिय है । आपका विरह हम बर्दास नहीं कर सकते. तब प्रभुने सबको सपरिवार शोकमुक्त होने का उपदेश दिया । संसार की विनश्वरता व स्वजन संबंधोकी क्षणभंगुरता समजाई । तब श्री नंदिवर्धन कहते है, 'भैया ! यह तो मैं भी समझता हूँ लेकिन आपका विरह हमारे लिए दुःसह है ।'

राजा सिद्धार्थ महाराज की राजगद्दी पर श्री वर्धमान कुमार को शुभ-मुहूर्त पर प्रतिष्ठित करने का सबजनों के प्रयत्न निष्फल रहे तब श्री नन्दिवर्धन का राज्याभिषेक हुआ और स्वजन वर्ग समेत राजा नन्दिवर्धनने अभी दीक्षा नहीं लेनेके लिए विनंती की । प्रभु पूछते है आप सब कभी दीक्षा की अनुमति दोंगे ?

वर्धमानकुमार की दिक्षा हेतु नंदीवर्धन से अनुमति की मांग और नंदीवर्धन का विषाद।

सबने दो वर्ष दीखाया, ज्ञानसे लाभ-हानि का ज्ञाता प्रभुने यह बात का स्वीकार किया।

प्रभु के गृहस्थ-वास से दो वर्ष व दान

तओ तद्दिणाओ आरब्भ परिचत्तसव्वसावज्जवावारो सीओदग-परिवज्जणपरायणो फासुयाहारभोई दुक्करबंभचेर-पलिपालणपरो परिमुक्कण्हाण-विलेवणपमुह-सरीरसक्कारो फासुओदगेण कयकत्थ प्रायपक्खा लणाइ-कायव्वो जिणिंदो ठिओ वरिसमेत्तं ॥ तहिंच

परिमुक्काभरणोऽविहु ण्हाणविलेवणविवज्जिओऽवि जिणो।
जुगवुग्गयबारससूरतेयलच्छि समुव्वहइ ॥१॥
सयणोवरोहणेहेण धरियगिहसरिसबज्झवेसोऽवि।
लक्खिज्जइ जयनाहो संजमरासिव्व पच्चक्खो ॥२॥
सा कावि गिहगयस्सवि जिणस्स मज्झत्थया पवित्थरिया।
जा निग्गहियमणाणवि मुणीण चित्तं चमक्केइ ॥३॥

- महावीर चरियम्

महानुभावों ! प्रभु महाज्ञानी है। गर्भकाल की प्रतिज्ञा की जैसी अभी भी ज्ञान से लाभ-हानि देख रहे है। ताकी कालक्षेप कर रहे है। परन्तु उस दिन से प्रभुने सावद्यकार्यो का त्याग किया। सचित्त जल का भी परिहार कीया, अपने लिए अनिर्मित- आहारपानी का उपभोग करते रहे। दुष्कर ब्रह्मचर्य का पालन करते रहें। स्नान-विलपन से देह का शृंगार छोडकर हाथ-पाँव के प्रक्षालन में भी अचित जल का हि उपयोग करते रहकर, अल्प वस्त्रालंकारो से बहुलतया कायोत्सर्ग मुद्रा में रहने लगे इस तरह प्रभु ने एक वर्ष पूर्ण की।

शास्त्र की नोंधहै कि 'स्नानादि के त्यागी श्रीप्रभु एकसाथ उगे हुए बारह-बारह सूर्य के तेज का धार रहे है। स्वजनों के उपरोधसे गृहस्थोचित वेष में रहे प्रभु प्रत्यक्षसंयमराशि सदृश दिखते है। घरमें रहे हुए प्रभु की बढी हुई मध्यस्थता महामुनिओं के चित्त को चमत्कार करानेवाली थी। एक वर्ष के बाद प्रभु वार्षिकदान करने का जब सोचते है तब सौधर्मेन्द्र महाराज का सिंहासन काँपता है। वह सात-आठ डगले प्रभु की समक्ष जाकर प्रभुकी स्तवना करते है। वैश्रमण कुबर को प्रभुजी के वार्षिक दान में धन-पूर्ति करने का आदेश देते है। प्रभु के वार्षिक दान का वर्णन कौन से शब्दो में किया जाय ?'

प्रभु का वरसीदान

इन्द्र के आदेशानुसार कुबेरभंडारी-वैश्रमणदेव, तीर्यक्जृंभक.... प्रकार के वैताढ्य की दो श्रेणियों में बसे हुए देवों को आदेश देते हैं, ये देव आज्ञा शिरोधार्य करके प्रभु के घर पर सुवर्णादि की वृष्टि करते हैं, जिसका तेज बालसूर्य के समान होता हैं। उद्घोषणापूर्वक प्रातःकाल के सूर्योदय से कल्पवर्तीवेला अर्थात् मध्याह्नकाल तक प्रभु बारह मेघ एक साथ हुए हो उस प्रकार दानवर्षा करते हैं। जिसमें माता-पिता और अपने नाम से अंकित सुवर्णमुद्रा देते है। तीनमार्ग, चारमार्ग (चौराहा), चौपाल आदि महामार्गों पर और भी अनेक स्थानों में हुई उद्घोषणा सुनकर आये अनाथ-सनाथ, पथिक, दरिद्र, कार्पटिक (कपड़ेवाले), वैदेशिक, ऋण से पीडित और दुखी जीवों के साथ-साथ अन्य भी धनाभिलाषियों को स्वयं दान देते हैं। ऐसे एक-एक दिन में एक करोड़ आठ लाख सुवर्णदान दिये जाते हैं।

श्रीनंदिवर्धन राजा ने भी दूर-दूर देश से आये याचकवर्ग के लिये दानशाला आदि खोल दी है। हाथी-घोडा और रथ आदि उत्तम सामग्रियों में से जिन्हें जो अपेक्षित है वे खुशी-खुशी ले जा सकें ऐसी व्यवस्था करा दी। एक वर्ष में प्रभु ने तीनसौ अठ्ठासी करोड अस्सी लाख सुवर्णमुद्रा का दान दिया। प्रभु की दानवर्षा देखकर पैसे फेंक देने योग्य है ऐसा लोगों को लगता था। जाने कि दानधर्म की प्रथम प्ररूपणा करनी हो इसीलिये प्रभु ने वार्षिकदान दिया होगा ? प्रभु का दान एकवर्ष तक चलते होने से वह वरसीदान कहा जाता है, इसी से आज भी दीक्षा के पावन अवसर पर दीक्षार्थी द्वारा दिये जाते दान को वरसीदान नाम दिया गया प्रतीत होता है।

प्रभुका वर्षीदान

लोकान्तिक देवों की विनती

जब जगन्नाथस्वामी दीक्षा का भाव करते हैं तब ब्रह्मलोकवासी नौ प्रकार के लोकान्तिक देव विनम्र भाव से विनती करते हुए कहते हैं कि– 'प्रभो, आपके ज्ञान की समानता कौन कर सकता है ? आपके बाल्यकाल की कीर्तिगाथा किन शब्दों में वर्णन किये जायें ? हे प्रभो! हमलोग अपना कर्तव्य समझकर स्मरणमात्र कराने के लिये आये हैं कि हे नाथ ! आप प्रव्रज्या स्वीकारें और धर्मतीर्थ की शीघ्र स्थापना करें कि जिससे जगत के जीव मिथ्यात्वभावों से बचकर आपके धर्मतीर्थ के प्रभाव से भवसागर तैर जाय।' इतना कहकर अपना कर्तव्य पूरा करके देव स्वस्थान चले जाते हैं।

हृदयद्रावक अवसर

देवों के जाने के बाद समीपवर्ती परिवार द्वारा अनुसरण कराते प्रभु नंदिवर्धन आदि ज्ञानक्षत्रियों की ओर जाते हैं। प्रभु को अपनी ओर आते देखकर वे भी प्रभु के सम्मुख आते हैं, बैठने हेतु श्रेष्ठ सिंहासन रखवाते हैं। प्रभु वहां बिराजमान होते हैं, परिवारजन यथाक्रम व्यवस्थित होकर आसन ग्रहण

लोकान्तिक देवो की विनती ।

करते हैं । प्रभु सबको सम्बोधित करते हुए कहते हैं कि 'महानुभावों! आपलोगों के द्वारा दिये गये समग्र का गृहवासकाल पूर्ण हुआ, अब सर्वविरति स्वीकारने का अवसर आ गया है, इसलिये सहर्ष मुझे अनुमति दीजिये । राग-मोह का बंधन तोड़ें, वियोग से घबराये अपने मन को स्थिर बनाइये ।' यह सुनकर सभी प्रकार इधर उधर देखते ही रह गये, आँसू भरे नेत्रों से रोते-रोते शोकसागर के आवेग को काफी प्रयास के बाद रोककर शान्त करके बोले 'भगवंत् ! ऐसे आपके शब्दों को सुनते हमारे श्रोत्र बहेरें नहिं हुए इससे लगता है कि हमारे कान वज्र के होंगे ? हमारा हृदय भी वज्र के सारपरमाणु से बना होगा ? जिससे कि यह टूटता नहीं तथा हमें ऐसा लगता है कि हमारे शरीर भी धरातल में प्रवेश नहीं कर सकता हैं, इससे लगता है कि उसमें दाक्षिण्य ही नहीं रहा है । आप ही विचार कीजिये कि ऐसी हालत बेचारा शब्द किस साहस को पाकर कैसे निकलेगा ? आपके बिना हमारा आधार कौन है ? ज्ञातक्षत्रियकुल की शोभा कौन ? अहो... हो हम सभी मंदभागी हैं कि हमारे हाथ से रत्न चला जा रहा है ।' इसके बाद भी पाँव में पड़कर अनिच्छा से भी निष्क्रमण करने देने की विनती करते हैं और प्रभु उनकी प्रार्थना का भंग नहीं करते ।

फिर तो हम सभी जानते है कि एक तरफ उनकी तैयारी चल रही है तो

प्रभुकी दिक्षा का वरघोडा ।

दूसरी ओर सिंहासन काँपने से इन्द्र दीक्षा का अवसर जान कर चौसठ इन्द्र सहित असंख्य देवताओं प्रभु का दीक्षोत्सव मनाने आ पहुँचे । प्रभु का अंतिम स्नान, इसके लिये दैवी सामग्रियाँ, एवं राजा द्वारा एकत्रित सामग्री आदि का वर्णन शास्त्र में अद्धुत रू प से किया गया है।

मार्गशीर्ष (कार्तीक)कृष्णपक्ष की दशमी तिथिके मंगल दिन में प्रभु के महाभिनिष्क्रमण हेतु निकाली गयी शोभायात्रा एक दृष्टांतरूप है । ज्ञातवनखंड नामक उद्यान में पधारे हुए प्रभु ने स्वयं अपने हाथों से आभूषणादि का त्याग करके पंचमौष्टिक लोच किया । सर्वसामायिकका उच्चारण किया । प्रभु सर्वविरति के धारक बने, तब इन्हें चौथा मनःपर्ययज्ञान उत्पन्न हुआ । इन्द्रादि देवगण प्रभु को वंदनकर नंदीश्वरद्वीप में दीक्षाकल्याणक का उत्सव करके अपने स्थान गये । यहाँ प्रभु स्वजनों को पूछकर विहार प्रारंभ करते हैं। यह दृश्य देखकर नंदीवर्धन आदि महानुभाव रोते हुए नेत्र से अपलक निहारते रहते हैं, पश्चात् सब अपने-अपने घर वापस आ जाते हैं। इसके बाद प्रभु पर हुए उपसर्गों की बात शुरु होती है।

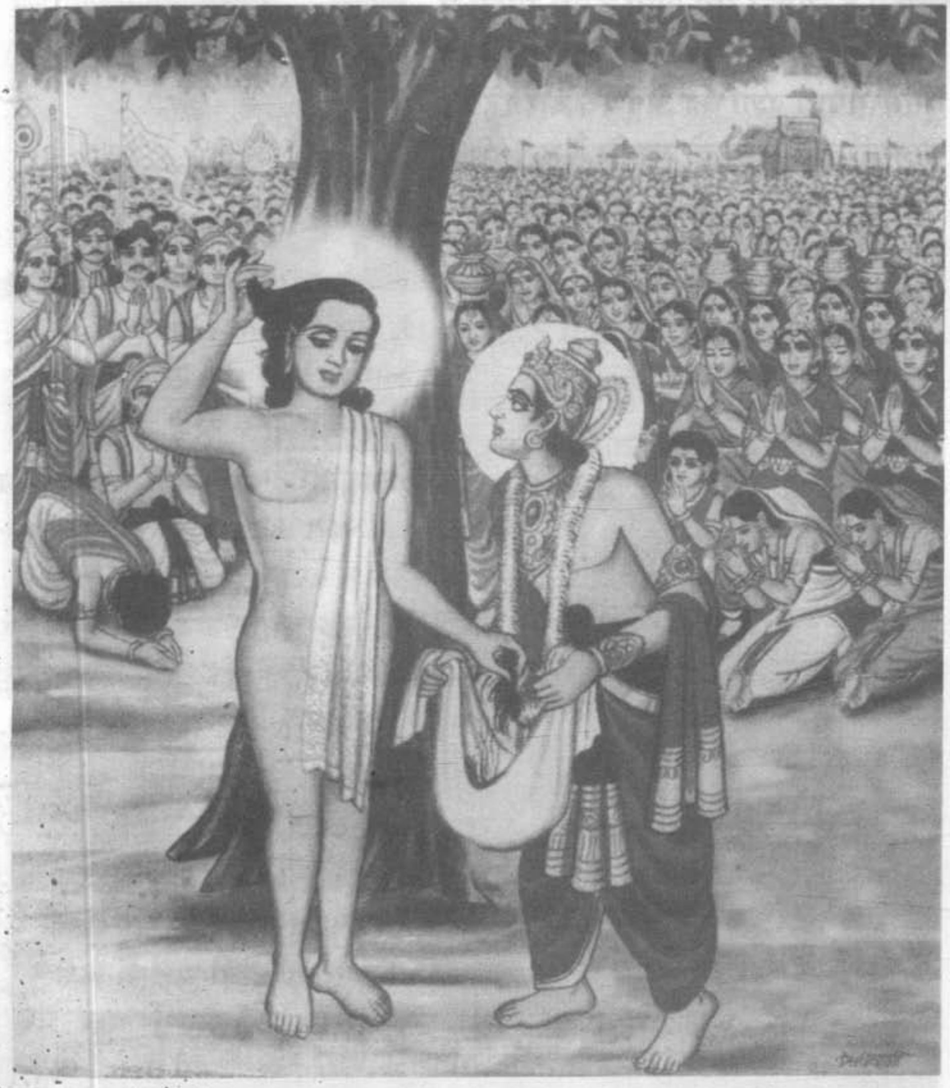

प्रभुवीर का दीक्षा कल्याणक....! प्रभुका पंचमुष्टि लोच ।

उपसर्गों की झडी

भगवान श्रीतीर्थंकरदेव जिस प्रकार के अप्रमत्तभाव से चारित्र का पालन करते हैं उस प्रकार पालन करने में कौन समर्थ है ? उपसर्ग-परिसहों में उनका अडोल स्वरूप अद्भुत है। प्रभु जब विहार करते हैं उस समय सभी रो रहे हैं, लेकिन प्रभु तो निर्लेप हैं। कदाचित् अपने लिये कोई रो रहे हों तो उसे देखना व सुनना अच्छा लगता है। कोई अपने लिये रोनेवाले हैं, राग करनेवाले है वे भी

अच्छे लगते। इसका कारण कि राग अच्छा लगता है लेकिन राग आग है उसे समझ में आता नहीं। भगवान महावीरदेव राग में भी वीतरागप्राय दशा का अनुभव कर रहे हैं। ज्ञानगर्भित वैराग्य के स्वामि हैं न ? दीक्षा स्वीकार करके पश्चात् समिति-गुप्तिमय जो अप्रमत्तसाधना तपोमय संयम के रूपमें की हैं, उसे किन शब्दों में वर्णन किया जा सके ? प्रभु पर तो उपसर्ग भी काफी हुए हैं। कहा जाता है कि गोवालिया से प्रारंभ होकर उपसर्ग गोवालिया के द्वारा ही समाप्त हुआ । साढे बारह वर्ष के छद्मस्थकाल में देव-दानव-मानव और

गोवालीया द्वारा प्रभु के उपसर्ग का प्रारंभ एवं ईन्द्र द्वारा रक्षा ।

१. गोसालाकी परेशानी, २. मुनि द्वारा तेजोलेश्या को छोडना

तिर्यंच आदि के अनुकूल-प्रतिकूल सभी आये हुए उपसर्गों को अदीनपने में सहन किये । गालियों की बरसात भी हुई, पत्थर, लकड़ी, धूल और ढेफा (मिट्टी) भी इन पर फेंका गया, अनार्यदेश के लोगों ने इन पर शिकारी कुत्तों को छोड़ा, शिर पर लोच से अवशेष बालों को खिंचा। इतने उपसर्गों को सहन

३. प्रभुका शरण स्वीकारते हुए गोशाला ४. शीललेश्या द्वारा प्रभु के द्वारा रक्षण ।

करते हुए भी प्रभु कर्म नाश के अटल निर्णय में एकचित्त होने पर समतामग्न ही रहे। प्रभु के जीवन की एक-एक बात रूचिपूर्वक सुनें तो अपनी आत्मा उन्नत होने लगे। योग और योगियों का प्रभाव भी महान होते हैं ये तो योगियों के भी योगी ऐसे योगीश्वर परमात्मा जीवन की बात है।

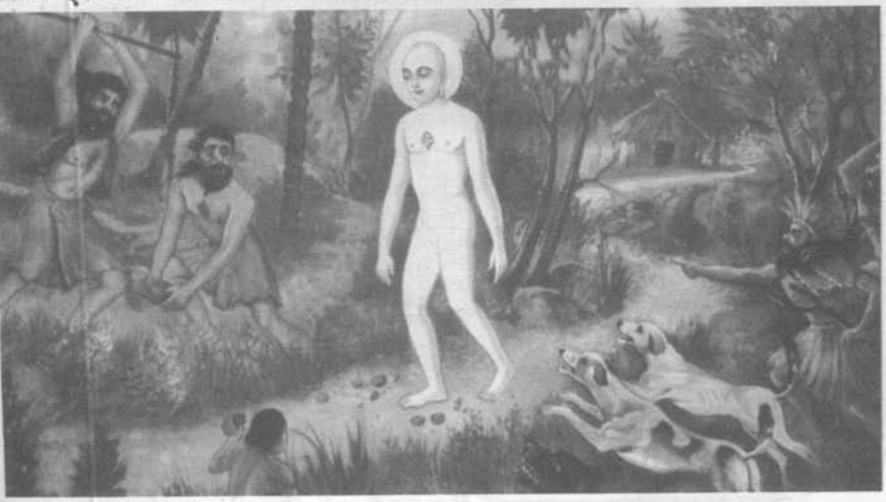

अनार्यदेश के लोगो द्वारा किये गये उपसर्ग ।

श्रीवीरप्रभु को तो दीक्षा के दिन से ही भौंरों के डंक, युवाओं की गंधपुटी की मांग, युवतियों की आसक्तिपूर्वक प्रार्थना आदि में असफल होते उपसर्गों की सामान्य शुरुआत हुई थी। हम लोग मुख्यतया संगमदेव द्वारा किये गये उपसर्गों पर विचार करने की धारणा रखे रहे हैं। इसके अलावा तो

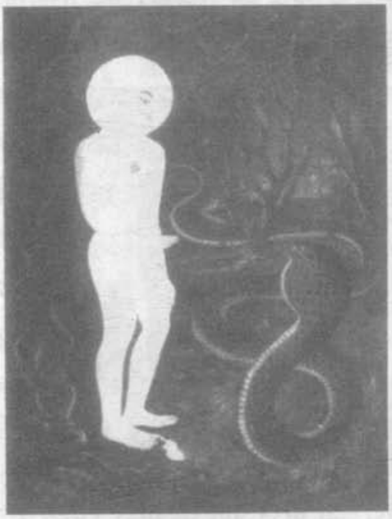

चंडकौशिक का उपसर्ग।

चंडकौशिक प्रतिबोध, शूलपाणि यक्ष प्रतिबोधइसके पहले तापसों के आश्रम में से अप्रीति के कारण अभिग्रहपूर्वक चातुर्मास में ही प्रभु का विहार, गोशालक का मिलन और उसका प्रभाव से दंग रहना तथा उसका शिष्य के रूप में रहना, अनेक कुतुहलों आदि द्वारा उत्पात करना और प्रभु को मार-पीट सहन करनी आदि अनेक बातें शास्त्रों में और प्रभु के चरित्रग्रन्थों में आती हैं। चार्तुमास के मुशलधार वर्षा की भांति उपसर्गों की झडी लग गयी और प्रभु ने वह साम्ययोग की तन्मयता से सहन किये हैं।

कटपुतनी देवी का शीत उपसर्ग।

शीत उपसर्ग एवं लोकावधि

त्रिपृष्ठ वासुदेव के भव में अन्तःपुर में एक नापसंद पत्नी थी। उसके हृदय में वैर की गांठ बँधी हुई थी। वह स्त्री भवों में भटकते-भटकते व्यंतरी रूप में उत्पन्न हुई, प्रभु को गंगा किनारे काउसग्ग ध्यान में उसने देखे, तो पुराने वैर को याद करके इन्हें ध्यान से विचलित करने हेतु तापसी का रूप बनाकर माघ महिने की कड़ाके की ठंढी में गंगा के शीतल जल जटा से उछालकर भगवान महावीर पर शीतोपसर्ग करने लगी। प्रभु ध्यान से तो विचलित न हुए पर ध्यान की स्थिरता के प्रभाव से जिससे समस्त लोकाकाश रूपी द्रव्य जाना व देखा जा सकता है ऐसा लोंकावधिज्ञान प्रभु को उत्पन्न होता है। सचमुच जगन्नाथ परमात्मा के धैर्य, शौर्य व गांभीर्य को कौन माप सकता है?

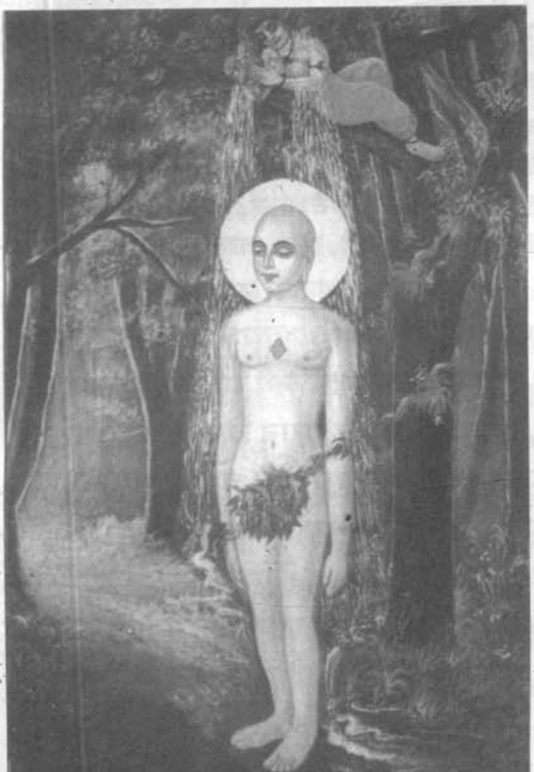

संगमदेव की द्वारा प्रभु को सताना।

एक ओर भयंकर तप भद्रादि प्रतिमाओं की साधनाएँ एवं दूसरी ओर उपसर्गों की परंपरा फिर भी अडोल भाव से सबकुछ सहन करते रहते हैं। प्रभु का ये अंतिम भव मानो कि कर्म के साथ सारे हिसाब को चुकाने के लिये ही खाते में जमा किये गये हों। **सहनशीलता साधना की पोषक है। जो सहन करता है वह सफल होता है। मुकाबला करनेवाला मार खाता है।** प्रभु श्रीवीर के जीवन की अद्भुत बातें पढें और विचारें तो हम सब को वे परम तारक परमात्मा के भक्त कहलाने का भी अधिकार है या नहीं ? यह प्रश्न उपस्थित हो शके।

इन्द्र की स्तवना-संगम का कोप

प्रभु विहार करते-करते बहु म्लेच्छों से भरी दृढभूमि में पधारे हैं। वहाँ पेढाल गांव के बाहर पेढाल-उद्यान के चैत्य में बिना जलवाला अट्ठम नामक तपपूर्वक एकतान चित्त में अचित्त एक पुद्गल-पर स्थापित दृष्टिपूर्वक एकरात्रिक महाप्रतिमा का प्रारंभ करते हैं। इस अन्तराल में निर्मल सम्यग्दर्शन के धारक परमात्म भक्त देवराज श्रीइन्द्रमहाराज, सौधर्म देवलोक की देवपर्षदा में रहे-रहे प्रतिमाधारी प्रभु को देखकर भावपूर्वक प्रणाम करते है और प्रभु के सद्भूत ऐसे सद्भुत गुणों की स्तवना करते हुए कहते हैं कि 'हे... देवों.... **ये भगवान महावीर समितिगुप्ति-निष्कषायभाव-आश्रय के ममत्व आदि से रहित हैं, प्रभु को कहीं भी प्रतिबंध-लगाव नहीं है, अपने धैर्य से वे तीन लोक के जनसमूह के विजेता है, देवेन्द्र, देव, यक्ष, राक्षस या विद्याधर आदि अत्यन्त समर्थ होते हुए भी, यहाँ तक की तीन भुवन के लोग मिलकर भी प्रभु को चलायमान करने में समर्थ नहीं हैं।'** यह सुनकर अनेक दोषों के संगम समान संगमदेव जो अभव्य है वे कहते हैं कि 'हे स्वामि ! ये आप क्या बोलते हो ? आप मालिक है इसलिये जो चाहे स्वच्छंद रूप से बोल रहे हो वह योग्य नहीं है, यदि ये सचमुच महान होते तो घर-बार का दायित्व छोड़कर ये पाखंड क्यों कर रहे हैं ? घरबार जैसे धर्म के समान दूसरा धर्म क्या है ? इसे कोई चलायमान भी नहीं कर सकता यह बोलना भी योग्य नहीं है। मैं अभी जाता हूँ और उसे प्रतिज्ञाभ्रष्ट करता हूँ।' ऐसा कह कर संगमदेव पृथ्वीलोक पर आने के लिये निकल पड़ता हैं। उत्तम लोगों का गुणगान अधम लोग कहाँ से बर्दाश्त कर सकते हैं ? इन्द्र महाराज भी प्रभुभक्ति से संगम को गलत बात करने का अवसर पुनः न मिलें इसलिये वे उपेक्षा करते हैं।

प्रभु और उनकी काया की माया

संगमदेव अभव्य है ये बात आप सभी जानते ही हो। वसंतऋतु में सभी वनस्पतियां जब खिल जाती है तब जबासा नामकवनस्पति मुरझा जाती है। उसी प्रकार जिस प्रभुस्तवना से भव्यलोग प्रसन्न बनते है। उससे ही संगम को खूब गहरा मत्सरभाव उत्पन्न हुआ है। इन्द्र महाराजा ने तो उपेक्षा की ही है, लेकिन सामानिकदेव जैसे ऋद्धि के मालिक गिना जानेवाला संगम देव को उनका प्रधान परिवार रोकता है। फिर भी यह कौन मात्र है ? ऐसा कहकर क्षण भर में पेढालग्राम में

उपस्थित भगवान के पास पहुंचता है। प्रभु को देखते ही देव को गहरा कोप उत्पन्न होता है।

जिन परमात्मा के दर्शन से दोष क्षय हो जाते है, उन परमात्मा को देखकर इनका द्वेष-दावानल धधक उठता है। हम सभी जानते ही हैं कि एक रात में संगम देव जो बीस उपसर्ग करता है। इसमें से एक भी उपसर्ग से तो दूसरों का प्राण भी जा सकता है, परन्तु प्रभु लेशमात्र भी ध्यान से चलायमान नहीं होते हैं। ये बीस उपसर्ग भक्तों के दिल को कंपायमान कर दें ऐसा है। सुननेवाले अजनबी लोग को भी विचार में रख दें ऐसे है। परमात्मा की धीरता के समक्ष तीन लोक भी वामन के समान है, वे संशयरहित है। लेकिन रांक संगमदेव अभव्य होने से गम्भीर मिथ्यादृष्टिवाला है उसे कहां से समझ आये ? अब हमलोग बीस उपसर्गों की बात शुरु करते हैं। प्राणसंशय उत्पन्न कर देनेवाली यह कर्मकथा ऐसे तो हर वर्ष में कल्पसूत्र द्वारा श्रवण करते ही हैं, परन्तु उस वक्त समय की कमी के कारण विवेचन नही किया जा सकता है।

काया की माया ने हमें इस प्रकार कमजोर बना दिया है कि मार्ग में चलते समय उड़ता हुआ तिनका भी हमें विह्वल कर देता है, एक नवकार के काउसग्ग में भी चित्त झूले की तरह डोलायमान होने लगता है। एक मच्छर, चीटी या मक्खी के काटने पर भी हम बेचैन हो जाते हैं।

हमलोग जानते हैं कि संगमदेव प्रभु के लिये ऐसी कल्पना न करे कि 'इन्द्र के बल से वह तप-जप करता है, उनका गुणगान तो सचमुच में मिथ्या आडंबर ही था।' इसीलिये इन्द्र ने उनकी उपेक्षा की। प्रभु को देखते ही उसे भयंकर आवेश आया। महापापी जीवों की हीनदशा कैसी होती है कि जिनके दर्शन या स्मरण से अच्छे-अच्छे को उपशम प्राप्त करावें, ऐसे परमतारक का दर्शन से इस अभव्य जीव को भयंकर क्रोधउत्पन्न होता है। वह एक-एक उपसर्ग करते जाता है, ध्यान में अडिग प्रभु को वह ज्यों-ज्यों देखते जाता है त्यों-त्यों पराजित जुआरी दोगुना खेलते जाता है' के न्याय से भयानक से भयानक उपसर्ग -श्रेणी का सर्जन किये जाता है। एक रात में उन बीस उपसर्गों की बात अब प्रारंभ करते है।

एक रात के उपसर्ग

१. प्रबल धूल की बरसात- जाने कि प्रलयकाल आया हो उस तरह

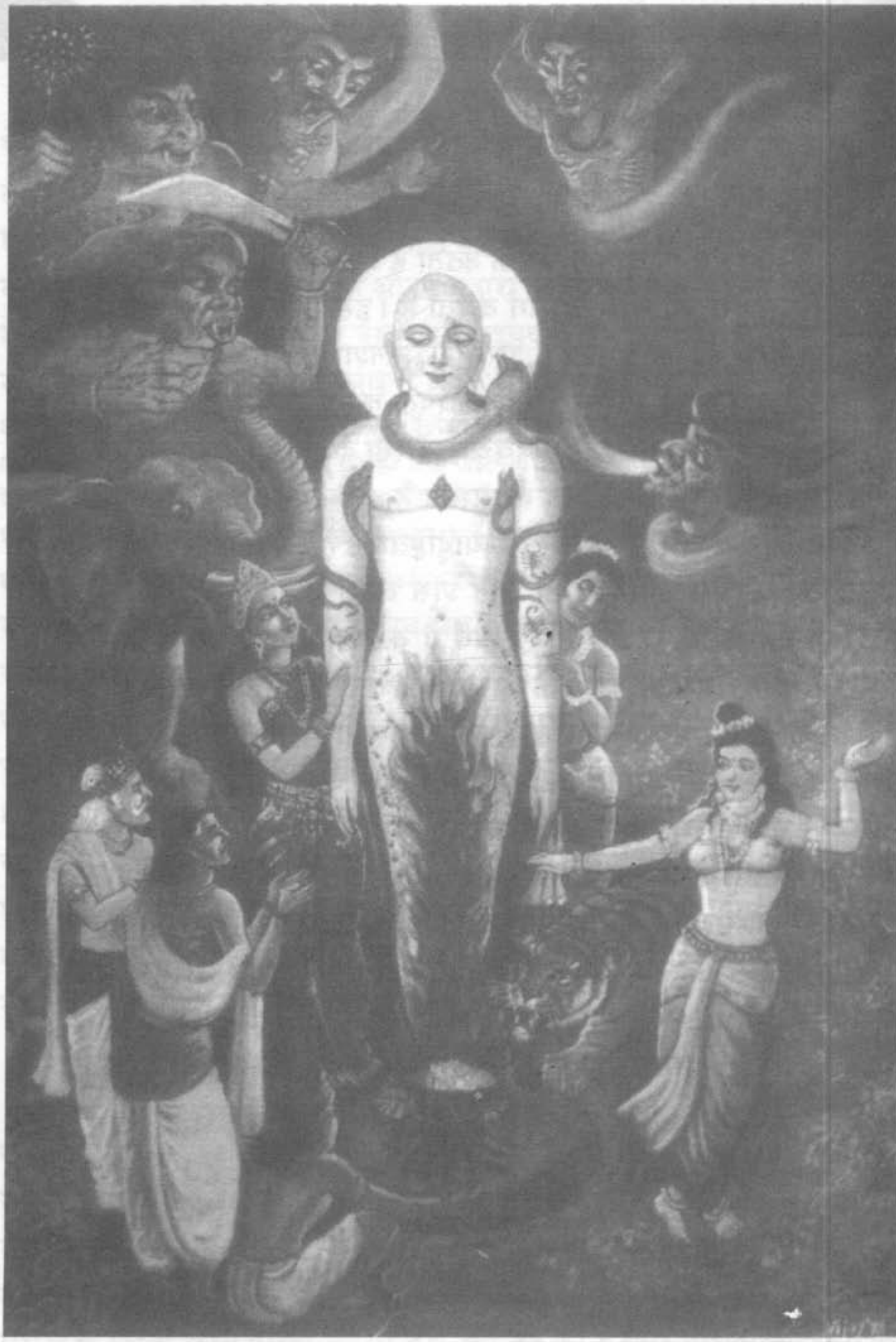

संगमदेव द्वारा प्रभु को किये गये प्रतिकूल-अनुकूल उपसर्ग ।

भयंकर क्रोधके साथ संगम भगवान के ऊपर तथा आस-पास घोर रूप से धूल की वर्षा करता है। इससे दोनो पाँव से लेकर क्रमश: आँख-कान तक धूल के ढेर से भगवान ढँक जाते हैं। श्वासोश्वास लेना भी मुश्किल हो जाता है। इसके बाद भी भगवान तील के छिलके का तीसरा भागमात्र भी ध्यान से विचलित नहीं होते हैं। प्रभु के अविचलित चित्त को देखकर संगम ने **२. चीटियों का झुंड की विकुर्वणा की** (बनाया) कि जो चीटी का मुख वज्र से भी कठोर व प्रचंड था। जैसे दुर्जन मनुष्य को अवसर मिलता है तो सज्जन मनुष्य की कोई कसर बाकी नहीं रखता है उसी प्रकार चीटियों का झुंड प्रभु को उपद्रव करने में बाकी नहीं रखता है। एक चीटी का दंश क्या हालत कर देता है वह हम सभी जानते ही हैं। कमल से भी कोमल कायावाले भगवान को वज्रमुखवाली चीटी काटकर आर-पार आती-जाती है एवं शरीर चलनी की भांति बना डालती है। इसके बाद भी भगवान का एक रोम भी नहीं हिलता है, इनकी धीरता को क्या उपमा दी जाय ? हम सभी इनके चरणोपासक कहे जाते हैं, चरणों में रहनेवाले गिने जाते है न ? किसी का हाथ या वस्त्र भी शरीर को स्पर्श कर जाता है तो भी क्या हो जाता है ? फूटे भाग्यवाले लोगों का मनोरथ की भाँति तीक्ष्ण मुँहवाली चीटियाँ भी प्रभु को कुछ भी न कर सकीं।

३. भयंकर डांस की विकुर्वणा- जिसे दूर करना मुश्किल था, सुई जैसा तीक्ष्ण मुँहवाले ये डांस प्रभु के ऊपर टूट पड़ते हैं। मानो कि खेत में टिड्डी पड़ी हो नही ? मच्छर या डांस इस गाँव में या घर में है यह मालूम होते ही अपनी क्या दशा हो जाती है ? प्रयत्न क्या होता है ?

अपने ये परमतारक परमात्मा देह पर निस्पृह होने से अपनी काया पर कठोर बनते हैं। कर्म पर क्रूर होते हैं। यदि सहन न करना होता तो ऐसे संगम जैसे हजारों की क्या ताकत थी ? एक नेत्र खोले कि सामनेवाले व्यक्ति फट जाय ऐसी अतुल शक्ति इनमें होती हैं। लेकिन कहा न, इन परमतारकों का संपूर्ण स्वरू प कोई शब्दों में वर्णन नहीं किया जा सकता।

अपन लोगों को एक रात नींद न आये या एकाधदिन भूख न लगे तो बार-बार शिकायत करनी होती है, क्योंकि देहाध्यास जीवित बैठा है। जबकि अपने ये परमेश्वर देह में होने पर भी देह से पर अवस्था का अनुभव कर रहे हैं।

वटवृक्ष पर आया हुआ संगम **४. धीमेल नामक क्षुद्र जंतुओं को प्रभु**

पर छोड़ता है, ये क्षुद्र जंतु अपने तीक्ष्ण मुख से प्रभु को काँटते है, फिर भी प्रभु निष्कंपभाव से स्थिर रहते हैं। क्यों अच्छा ठीक ? तुलना करने जैसी है अपने आप से। ऐसे एक से बढकर एक, मात्र एक रात के बीस उपसर्ग अपने तो सुनने के है। परमात्मा ने सबको सहा है।

निस्पृह सदा सुखी

भगवद्भाव अभी प्रकट हुआ नहीं है, राग की अभी उपस्थिति होने बावजुद भी देह की चाहत से पर होने पर आपत्ति संपत्तिरू प लगती है। उन्हें सुख ही सुख है। इसीलिये स्वर्गीय परमगुरुदेवश्री फरमाते थे **'संसारसुख के भूखे को चाहे कहीं बैठाओ वह दुखी होने के लिये ही उत्पन्न हुआ है।'** कैसी ये मार्मिक बात है। आत्मसुख की रमणता की अपेक्षा परमात्मा को देहसुख की अपेक्षा ही न होने से 'देहे दुःखं महासुखं' लग रहा है।

५. अब बिच्छुओं की वणजार आयी- एकदम पीली-पीली शरीर की कांतिवाले बड़ी पूंछ के छोड़ पर विषव्याप्त कांटेवाले ये बिच्छुओंने हमला तो कर दिया, लेकिन प्रभु की धीरता व सहनशीलता के सामने वे भी निर्बल सिद्ध हुए। प्रभु की ध्यानधारा और अधिक उत्कट बनती जा रही। वहां बेचारे बिच्छुओं की क्या बिसात ? आप ही विचारिये कि संगम का गुस्सा नहीं बढे ? इसलिये उसने **६. नेवलाओं का एक काफिला तैयार कर दिया** यह प्रभु को चलायमान करने की प्रतिज्ञा लेकर आया है। लेकिन उस बेचारे को पता नहीं है, तुम्हारे जैसे कितने ही कितनी प्रतिज्ञाएँ करते हैं और सब के सब पण टूटकर चूर्ण हो जाने के लिये ही पैदा होते हैं। यूंकि जगन्नाथ की धीरता मेरुपर्वत को भी मुकाबले में पिछे छोड़ दें ऐसी है। पृथ्वी पर इनकी वीरता के टक्कर का उदाहरण दूसरा न मिले ऐसी है। नेवलाओं अपने नुकीले दाढों से प्रभु के शरीर को खाने लगे। शरीर से मांस का टुकडे लेने लगे। लहु की पिचकारी निकल पड़े ऐसे दन्तप्रहार करने लगे... लेकिन समत्वयोग के उच्चतम शिखर पर पहुँचे ऐसे पुण्यपुरुष को इससे क्या हो सकता है ? **ममत्व की अपेक्षा समत्व की ताकत अनेक गुणी अधिक है यह निश्चित ही है।**

प्रभु का अप्रतिम सत्व

सभा: शरीर पर धार पड़ता है ?

पूज्यश्री: देह तो औदारिक है.... प्रहार पर प्रहार इन पर हो रहे हैं... धार

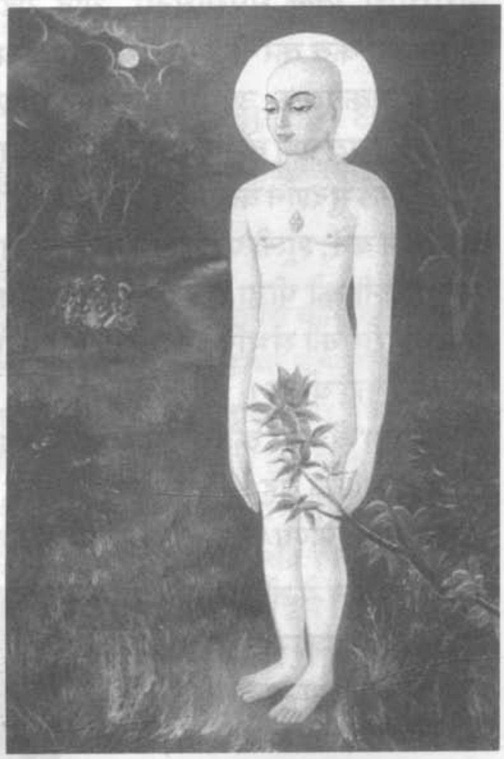

ध्यानस्थ मुद्रा में निश्चल प्रभु को देखते हुए संगमदेव ।

पड़ता है भी सही... देवमाया होने से छिप भी जाते और प्रभु के अचिन्त्य प्रभाव होने से फिर देह का सौन्दर्य प्रगट हो जाये ऐसा भी बन सकता है । संगम प्रभु को पीड़ा देकर खुश होता है । लेकिन अपने विभंगज्ञान से प्रभु के चित्त की स्थिरता देखकर दुःखी भी होता है । उसको ऐसा भी होता है कि अब ये चलायमान नहीं होंगे तो मेरा क्या होगा ? मेरी प्रतिज्ञा का क्या ? लोक व देवताओं को कैसे मुँह दिखाऊँगा ?

ग्रन्थकार भी लिखते हैं कि 'तेहिंपि अभिभवियं भगवओ सरीरं, न उण ईसिं पि सत्तं' अर्थात् इन नेवलाओं ने भगवान के शरीर को पराभव किया, लेकिन सत्व को लेशमात्र भी पराभूत नहीं कर सके ।

सच्ची बात यह है कि हम सभी शरीर को मैं या मेरा मानते आये हैं । पड़ोसी के घर से मारा जाय अथवा आग लगे उससे आपको क्या लगता है ? अधिक से अधिक अपने घर के बैठक पर बैठे-बैठे उसकी चिंता होगी । क्या सही है न ? शरीर को पड़ोसी माने तो ? कषाय की उपस्थिति में प्रभु की यह अवस्था होने से ही जाने कि कवि की उपेक्षा हमलोगों को कल्पसूत्र में पढने-सुनने के लिये मिल रही होगी न ? संसार का नाश और रक्षण करने की अद्भुत क्षमता होने पर भी अपराधी संगम की प्रभु ने उपेक्षा ही की न ? इसी से उस क्रोधको हुआ कि ऐसे अवसर पर भी तुम्हें हमारी जरू रत नहीं ? जाने कि क्रोधको क्रोधआया और क्रोधप्रभु को छोड़कर चला गया । हमलोगों को तो यारी (क्रोधसे) हैं न ? सम्भालकर रखे तो उसे पोषण मिलता है न ? जीवन में जैसे आगे बढते हैं वैसे कषाय भी बढते हैं या घटते हैं ?

शास्त्रवचनों का भी उपयोग हम अपने बचाव के लिये करते हैं- 'शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम्' यदि यह धर्मसाधन है ऐसा लगता है तो धर्मसाधना कब करनी ? मरने के बाद ? धर्म का साधन है तो जितनी ताकत है उतना विवेकपूर्वक उपयोग कर लेना या शरीर को संभालते ही रहना ? हमारी नि:सत्वता एवं प्रभु के परमसत्व के बीच जमीन-आसमान का अंतर है।

सेठ सुदर्शन का प्रसंग याद करने योग्य है। भेदज्ञान हो जाय तो वह कहीं भी दीन न बनें, शूली पर चढाने के लिये ले जाया जाता है, उस समय भी अपने कारण रानी को पीडा न हो, इसलिये मौन रहकर भी प्रतिष्ठा की खिल्ली उड़ने दीया। शरीर की संभवित पीडाओं को स्वीकार लिया, लेकिन परपीडादायक वचन भी नहीं बोला।

संगम बेचारा क्रोधांधहो जाता है। प्रभु के तरफ से कोई प्रतिकार होता नहीं है। इसलिये वह अधिक व्याकुल होता है। इतने निष्फल हुए नेवलाओं को दूर करके ७. फणा के रत्नतेज से भी भयंकर ऐसे काले नाग को दंश देने हेतु भेजा। लेकिन ये तो प्रभु वीर थे न ? वे तो शान्त-प्रशान्त स्वरूप है। वीर शब्द की व्याख्या मालूम है न ?

विदारयति यत्कर्म,
तपसा च विराजते।
तपोवीर्येणयुक्तश्च,
तस्माद्वीरइति स्मृत: ॥१॥

जो कर्म को नाश करने के लिये सज्ज हो, तप द्वारा शोभायमान होते हो और तपोवीर्य से युक्त हो वह वीर कहलाते है, मलयाचल पर्वत पर चंदन के वृक्ष पर डाली-डाली को कैसे सर्प लपेटे रहते है ? उसी तरह भगवान महावीर के पूरे शरीर को सर्पोंने लपेटा है। डंक पर डंक मारते है। जहर उगलते है, लेकिन समता रूपी अमृतकुंड में रहनेवाले प्रभु को

संगमदेव का उपसर्ग।

सर्प का जहर क्या बिगाड़ सकता है ? संगम न जाने किस मुहूर्त में आया कि उसे हार ही हार हो रही है।

राजसभा यह धर्मसभा

सर्प की जाति... दंश पर दंश मारे जाता है प्रभु ज्यों कि त्यों अडिग रहते हैं।

सभा: मन पर ऐसा नियंत्रण कैसे संभव है ?

पूज्यश्री: वह पुराना प्रसंग याद करो।

एक नगर है..... राजा धर्मप्रेमी है.... संसार में है। राज्य की जिम्मेदारी है। राजसभा में आवश्यकतानुसार राज्यचर्चा के बाद धर्मसभा बन जाती है। एक बार नगरशेठ की जगह उनका पुत्र सभा में आता है। महात्मा का गुणगान चल रहा है... राजा महात्माओं के मनोनिग्रह की प्रशंसा करते हैं। श्रेष्ठिपुत्र को यह बात आवश्यकता से अधिक लगती है। वह कहता है महाराज ! आप नायक हो.... आपकी बात का प्रतिकार कौन करे ? लेकिन मन को निग्रह किया जा सके यह बात गले उतरती नहीं है। राजा सच्चे धर्मप्रेमी थे। इस लिए जीव धर्म प्राप्त करे ऐसी इनकी इच्छा थी। इसके कारण सत्ता के बल से चुनौती देने का प्रयत्न नहीं किया बल्कि प्रसंग आने पर समझा देने की इच्छा से उस समय इस बात को एक नया मोड़ दे दिया।

एक समय अपने अंगत सेवक को श्रेष्ठिपुत्र के साथ मित्रता करने के लिये सूचन किया। जब दोनो में अभिन्न मित्रता हो जाय तो बताने के लिये सूचन दिया थोड़े दिनों में मैत्री जम गयी। राजाने अपनी अंगुठी देकर सेवक को कहा कि उसके आभूषण मंजूषा में वह न जाने इस तरह यह रख देना। इसके बाद मुझे बताना। सेवक ने वैसा ही किया। राजाने एक बार सभा समक्ष ही 'मेरी मुद्रिका की चोरी हो गयी है, गुम हो गयी है, जिसके हाथ में आये वह पहुंचा दें, नहीं तो सबकी तलाशी लेनी होगी, जिसके यहाँ से अंगुठी मिलेगी उसे मृत्युदंड दिया जायेगा।' ऐसी उद्घोषणा करायी गयी। किसे अपने पर शंका हो ? सभी निश्चित थे। राजाने दो-तीन दिनों के बाद सबके घर तलाश करने का आदेश दिया। इसके साथ ही गुप्त रूप से श्रेष्ठिपुत्र के यहां ही जाने का सिपाहियों को हुकुम दिया। सेठ व उनके परिवार को इस बारे में चिंता ही नहीं थी। पूरा घर खोल कर छोड़ दिया, उनके पास छिपाने जैसा कुछ था ही नहीं। इसलिये जेवर का डिब्बा भी खोलकर बताया। राजा के निर्देशानुसार श्रेष्ठिपुत्र के घर में

आभूषण के डिब्बे से अंगूठी मिलने पर उसे सीपाहियों नें हथकडी पहना दी। सेठ के घर में एवं गाँव में सन्नाटा छा गया। नगर के बाजार बीच होकर श्रेष्ठिपुत्रको ले जाया जायेगा तो क्या होगा ? याद रखो कि राजा धर्मप्रिय है, दंभी अथवा द्वेषी नहीं है। वे सच्ची बात समझाने की युक्ति प्रस्तुत कर रहा है। नगर के लोग इकड्डे होकर झुंड में राजदरबार की ओर आने लगे। लग रहा है कि दरबार में कोई तमाशा का आयोजन हो। राजाजी के पास पहुँचकर सेठ हाथ-पाँव जोड़ते हैं। निवेदन करते हैं, महाराज, एक अपराध माफ कर दीजिये, अब ऐसा अपराध नहीं होगा। यह कैसे हुआ वह समझ में ही नहीं आता है। आप बोले तो मैं अपनी सारी संपत्ति राज को समर्पित कर दूँ लेकिन मेरे पुत्र को छोड़ दीजिये। लेकिन वे तो राजा हैं न ? राजा कहते कि सेठ-साहुकार के वेश में ऐसा धंधा ? मृत्युदंड से थोड़ी भी कम सजा नहीं होगी।

सेठ की काफी विनती (चिरौरी)पश्चात् राजा ठंढा होने का दिखावा करते कहते हैं कि यदि तुम्हारा लड़का मेरा कहा मानने को तैयार होगा तो उसे जीवित छोड़ दूंगा। क्या राजा उस राजसभा की बात स्वीकारने की बात कहते होंगे ? ना... ऐसे जोर-जुल्म से धर्मप्रदान कराया नहीं जाता। अलबत् जीव विशेष के लिये जो उपाय उचित लगे उसे किया जाता है। परन्तु, यहाँ राजा खूब समझदारीपूर्वक काम लेना चाहते हैं।

तुम्हारा मन कहां था ?

राजाजी कहते हैं कि 'सेठ, तुम्हारा लड़का सीधे कटोरे में छलछल भरा हुआ तेल सीधी हथेली में रखकर नगर के सभी मुख्य मार्ग पर घुमने के लिये निकले और एक बूंद भी तेल बाहर नहीं गिरे, चारों ओर घुमते-घुमते राजसभा में आये तो उसकी सजा माफ कर दी जायेगी। है उसकी तैयारी ?' सेठ एवं उसके पुत्र ने स्वीकृतिसूचक हाँ मी भरी। राजा के सूचन मात्र से पूरे नगर को सजाया गया, जगह-जगह पर पाँचो इन्द्रियों के अनुकूल विषयवस्तुएँ रखी गयी। गीत-संगीत, नाटक आदि मनोरंजन के उपकरण रखे गये। रू पवती ललनाओं का नृत्य-गान आयोजन, सुगंधित-सुवासित चूर्ण, गुटिकाएँ रखी गयी। अनेक खाद्य-पेय वस्तुओं की रचना, मुलायम वस्तुओं का ढेर स्थान-स्थान पर रखा गया। इसके बाद श्रेष्ठिपुत्र को तेल का कटोरा हाथ में लेकर पूरे गाँव घूमने के लिये रवाना करते हुए कहा गया कि- तेल का एक बूंद भी जमीन पर गिरा कि सिपाही द्वारा तुम्हारा सिर देह से अलग कर दिया जायेगा। जबकि

सीपाहियों को कुछ न करने के लिये सूचन था । सेठ का लड़का तो पूरा गाँव घूमकर राजदरबार में आ गया । इसके बाद राजा ने पूछा कि-गांव घुमने के अन्तराल में तुमने क्या देखा ? क्या अनुभव किया ? श्रेष्ठिपुत्र ने बताया कि महाराज ! मुझे कुछ मालूम नहीं । क्यों.... तुम्हारा मन कहाँ था ? उसने कहा कि इस कटोरे में क्या ? आपकी आज्ञा से ये नंगी तलवार साथ में थी इसलिये । अत: एक मृत्यु के भय से यदि मन कटोरा में जम सकता है तो भवोभव के भ्रमण का भय उत्पन्न हो तो महात्माओं के मन का निग्रह नहीं हो सकता ? सेठ का लड़का झेंपते हुए गिर परा और भूल स्वीकार लिया । इस कौतुक का रहस्य भी समझ गया । महात्माओं के सच्चे गुणों का गान करने लगा । उस को भी धर्म अच्छा लगने लगा । मनोनिग्रह निश्चय ही कठीन है परन्तु अशक्य नहीं । हमलोगों का प्रयत्न ही कहाँ है ?

अपने तो प्रभु महावीर पर संगम द्वारा किये गये उपसर्गों की बात कर रहे हैं । सात उपसर्गों की बात पूरी हुई न ? ८. अब चूहों की फौज भी तैयार होकर आ गयी । चूहों की जाति को तो जानते हैं न ? रात-दिन खा-खा करते हुए कोने-कोने फिरते रहना । एक ओर मल-मूत्र त्याग करना तो दूसरी ओर जहां चाहे छिद्र करके खाते जाना, ऐसी तो इस जाति की आदत है । दाँत से प्रभु के शरीर को काटते जाता है और ऊपर से मूत्र करते जाता है । विचार करो, महानुभावों ! कैसी मर्मान्त पीडा होती है ? संगम का क्रोधज्यों-ज्यों बढते जाता है त्यों-त्यों भगवान की एकाग्रता, समता बढती जाती है । तुम हिलो पर मैं ना हिलूँ का अभिमान नहीं है बल्कि समत्वयोग की श्रेष्ठ फलश्रुति है ।

कदर्थनाओं की परंपरा

ग्रन्थकारों ने जिन्हें बारंबार सुराधम अर्थात् अधम जाति का देव बतलाया है ऐसे संगमदेव, **९. उछलते सूंढवाले हाथियों का समूह तैयार करता है ।** पर्वत के समान ऊँचे काले चट्टान की तरह हाथियोंने विविधप्रकार से प्रभु को पीडा देते हैं । इसी तरह **१०. हथिनियाँ यमराज के समान विकराल रूप करके आती हैं ।** स्त्री जब अपनी जाति पर जाती है तो पुरुष की अपेक्षा अधिक क्रूर बन सकती है । हाथिनियों ने सूंढ में लेकर प्रभु को आकाश में उछलना आदि अनेक प्रकार की असह्य यातनाएँ दी लेकिन सभी शून्य....**११. पिशाचों को इन पर छोड़ा गया** पर ये भी फोगट गया । **१२. विकराल दाढवाला नुकीले**

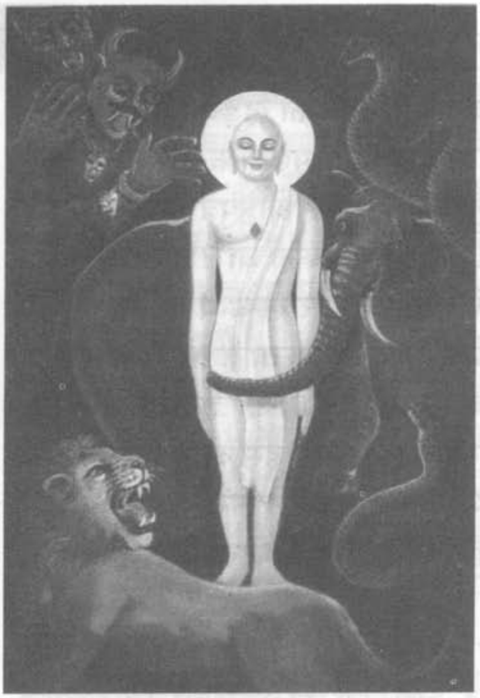

संगमदेव का उपसर्ग ।

बाण से भी भयंकर मुंहवाला सिंह भेजा। जैसे गरीब के घर में बरसात के समय अल्पतेल से जल रहे दीपक हवा के एक झोंके से बुझ जाता है उसी तरह थककर वे शांत हो गये। उसका भी कुछ चला नही।

सामान्य लोगों के प्राण हर लेने जैसी अनेक चेष्टाएँ करने के बावजुद भी प्रभु ध्यान में अचल हीं रहे, संगमदेव हृदय से काफी दुःखी हुआ । **१३. जैसे थे वैसे ही स्वरूपवाले श्रीसिद्धार्थ महाराज और त्रिसला देवी को लेकर हांजर कर दिया।** करुण विलाप करते वे दोनों कहते हैं कि पुत्र । क्या तुमने ये दुष्कर कार्य शुरु कर दिया हें ? छोड़ ये प्रव्रज्या और घर आकर मेरी देखभाल कर। हे वत्स! तुम्हारे विरह में हम अशरण और रक्षणरहिते हो गये हैं। इस प्रकार करने के बाद भी भगवान को अक्षुब्धदेखकर **१४. संगम छावनी लगाता है।** पाचक (खाना पकानेवाला) पत्थर न मिलने पर भगवान के दोनो पांव के बीच आग सुलगाकर रसोई बनाने लगता है।

महानुभावो! इन्द्र महाराज और देव इन सभी उपसर्गों को देवलोक से देख रहे हैं। संगम को नीचे आते ही इन्द्र गीत-संगीत आदि को बंद कराकर दैन्यरूप से रह रहे हैं। इन सभी कदर्थनाओं के मूल में और मेरे द्वारा की गयी प्रभु की प्रशंसा है, यह उसे मालूम है। यह सुराधमको अटकाने में अच्छाई देखता नहीं है। इसीलिये उसने उपेक्षा की है। देव वेदना देख रहे हैं लेकिन उसे ले सकते नहीं, प्रभु वेदना का संवेदन करते हैं, परन्तु विरक्तभाव में रमण करते हैं। हम लोग तो क्षण भर भी रोग या पीडा बर्दाश्त नहीं कर सकते।

सिंह अनगार के लिये औषधलियाँ

सभाः भगवान ने भी दवा ली है न ?

पूज्यश्री: कब और किसलिये ली यह नहीं जानते ? याद करो, प्रभु को केवलज्ञान होने के बाद की यह बात है। गोशाला ने प्रभु पर तेजोलेश्या छोड़ी थी। भगवान को लहु का अतिसार हुआ था। सोलह देश को जला देनेवाली तेजोलेश्या भगवान के शरीर को परिक्रमा करके गोशाला के शरीर में घुँस गयी। गोशाला को सात अहोरात्र(दिन-रात) तक वेदना हुई, पश्चाताप से समकीत पाया, थोड़े ही समय में परलोक पहुंचा। भगवान भी अब जायेंगे। ऐसा समाचार फैला हुआ था। उस समय सिंह नामक अनगार यह सुनकर सिसकते-सिसकते रोने लगते है। भगवान उसे बुलाकर समझाते हैं। स्वयं वह दीर्धकाल तक जीवन्त रहनेवाले हैं इस प्रकार समझाया। लेकिन वे तो यही जिद्द लेकर बैठे थे कि प्रभो ! आप दवा लीजिये तो मैं आश्वस्त होउंगा, तब प्रभु ने बताया कि जाओ रेवती श्राविका के यहां जो उसने अपने घर के लिये औषधबनाया है उसे ले आओ। मेरे लिये बना है वह लाना नहीं। तब वह महात्मा जाकर दवा ले आते है सही है न ? लेकिन प्रभु तो शरीर से निरपेक्ष ही थे न ?

हमारे-तुम्हारे उपकार के लिये

इस देह से ममता न उतरे या उतारने का प्रयत्न हम न करे तो अपनी क्या गति होगी ? कहाँ अपने भगवान और कहां हमलोग ? भगवान ने यह सब कुछ हमारे-तुम्हारे लिये सहन किया है। पूर्व के तीसरे भव में जीवमात्र के कल्याण की भावना करके आये हैं। शासन की स्थापना करनी है, इसके लिये केवलज्ञान प्राप्त करना है, इस हेतु मोह को मात देनी हैं। इसी से सब सहन करने का निर्णय लेकर बैठे हैं। हमलोग जानते हैं कि प्रभु कर्म की बलवत्ता होने से अनार्यदेश में भी गये हैं न ? वहां की अनार्य प्रजा जितनी कदर्थना करेंगी उतनी आर्य प्रजा नहीं कर सकती इसीलिये न ? अपने सभी तीर्थंकर भगवंतों की जीवमात्र के उपकार की भावना और अंतिम भव की साधना किन शब्दों में वर्णन किया जाय ? किसके साथ तुलना की जाय ?

उस संगमदेव की मूल बात पर आये। उसने १५. चंडालों के द्वारा पक्षियों का पिंजरा प्रभु के अंगों पर लटकाया। ये पक्षी बाहर चोंच निकालकर प्रभु के शरीर को नोचने लगा और मांस का लौंदा गिराने लगा। फिर भी भगवान को अक्षुब्धभाव में देखकर प्रत्येक पल बढता कोपवान संगमने १७. प्रचंडकाल सदृश हवा फैलायी, उससे ध्यानाग्नि प्रदीप्त हुआ पर

पूज्यश्री: कब और किसलिये ली यह नहीं जानते ? याद करो, प्रभु को केवलज्ञान होने के बाद की यह बात है। गोशाला ने प्रभु पर तेजोलेश्या छोड़ी थी। भगवान को लहु का अतिसार हुआ था। सोलह देश को जला देनेवाली तेजोलेश्या भगवान के शरीर को परिक्रमा करके गोशाला के शरीर में घुँस गयी। गोशाला को सात अहोरात्र(दिन-रात) तक वेदना हुई, पश्चाताप से समकीत पाया, थोड़े ही समय में परलोक पहुंचा। भगवान भी अब जायेंगे। ऐसा समाचार फैला हुआ था। उस समय सिंह नामक अनगार यह सुनकर सिसकते-सिसकते रोने लगते है। भगवान उसे बुलाकर समझाते हैं। स्वयं वह दीर्घकाल तक जीवन्त रहनेवाले हैं इस प्रकार समझाया। लेकिन वे तो यही जिद लेकर बैठे थे कि प्रभो ! आप दवा लीजिये तो मैं आश्वस्त होउंगा, तब प्रभु ने बताया कि जाओ रेवती श्राविका के यहां जो उसने अपने घर के लिये औषधबनाया है उसे ले आओ। मेरे लिये बना है वह लाना नहीं। तब वह महात्मा जाकर दवा ले आते है सही है न ? लेकिन प्रभु तो शरीर से निरपेक्ष ही थे न ?

हमारे-तुम्हारे उपकार के लिये

इस देह से ममता न उतरे या उतारने का प्रयत्न हम न करे तो अपनी क्या गति होगी ? कहाँ अपने भगवान और कहां हमलोग ? भगवान ने यह सब कुछ हमारे-तुम्हारे लिये सहन किया है। पूर्व के तीसरे भव में जीवमात्र के कल्याण की भावना करके आये हैं। शासन की स्थापना करनी है, इसके लिये केवलज्ञान प्राप्त करना है, इस हेतु मोह को मात देनी हैं। इसी से सब सहन करने का निर्णय लेकर बैठे हैं। हमलोग जानते हैं कि प्रभु कर्म की बलवत्ता होने से अनार्यदेश में भी गये हैं न ? वहां की अनार्य प्रजा जितनी कदर्थना करेंगी उतनी आर्य प्रजा नहीं कर सकती इसीलिये न ? अपने सभी तीर्थंकर भगवंतों की जीवमात्र के उपकार की भावना और अंतिम भव की साधना किन शब्दों में वर्णन किया जाय ? किसके साथ तुलना की जाय ?

उस संगमदेव की मूल बात पर आये। उसने १५. चंडालों के द्वारा पक्षियों का पिंजरा प्रभु के अंगों पर लटकाया। ये पक्षी बाहर चोंच निकालकर प्रभु के शरीर को नोचने लगा और मांस का लौंदा गिराने लगा। फिर भी भगवान को अक्षुब्धभाव में देखकर प्रत्येक पल बढता कोपवान संगमने १७. प्रचंडकाल सदृश हवा फैलायी, उससे ध्यानाग्नि प्रदीप्त हुआ पर

भी प्रभु को निश्चल देखकर अनुकूल उपसर्ग करने का निर्णय करता है।

अनुकूल उपसर्ग

प्रतिकूलता सहन करनी सरल है, अनुकूलता मिले तब शुभपरिणाम या ध्यान की एकाग्रता कायम रखनी मुश्किल है इसलिये उसने अब अपना निर्णय बदला।

२०. देदीप्यमान विमान तैयार करके दिव्य सामानिक देव की ऋध्दि को बताते हुए कहता है कि 'हे महर्षि! आपके सत्व से तुष्ट हुआ हूं, आपके तप, क्षमा और बल एवं प्रारंभ की हुई प्रतिज्ञा निर्वाह की अटलता, जीवन से निरपेक्षता और जीवरक्षा का भाव आपमें अद्भुत है। अब ये तप-जप छोड़ दिजीये, यदि आप कहे तो इसी शरीर से सुखपूर्ण देवलोक में ले जाउं अथवा एकांतिक सुख से भरपूर मोक्ष में पहुँचा दूँ। कहे तो यहीं राजाधिराज बना दूँ। जरा भी क्षोभ न रखियेगा। जो चाहिये वह बोल दिजिये लेकिन प्रभु को मौन एवं ध्यान में स्थिर देखा तब देव ने विचारा कि काम का शासन सर्वश्रेष्ठ है इसे कोई जीत सकता नहीं, महामुनियों के भी चित्त को हलचल कर देता है अतः काम का मुख्य शस्त्ररूप कामिनियाँ उसके पास भेजूं ऐसा विचारकर एक साथ सभी ऋतुएं तैयारकर एकदम मादक वातावरण खड़ा कर दिया। देवांगनाओं को पूरी साज-सज्जा के साथ भेज दिया। स्त्री की जाति एवं मुक्त वातावरण फिर क्या बाकी रखे ? अनेक विकृत कार्यों को करने पर भी जगद्गुरु जब लेशमात्र भी विचलित नहीं हुए और सूर्योदय हुआ। ये सभी उपसर्ग मात्र एक रात की घटना है। हर प्रकार से संगम हार गया तो शोचने लगा कि अब क्या करना

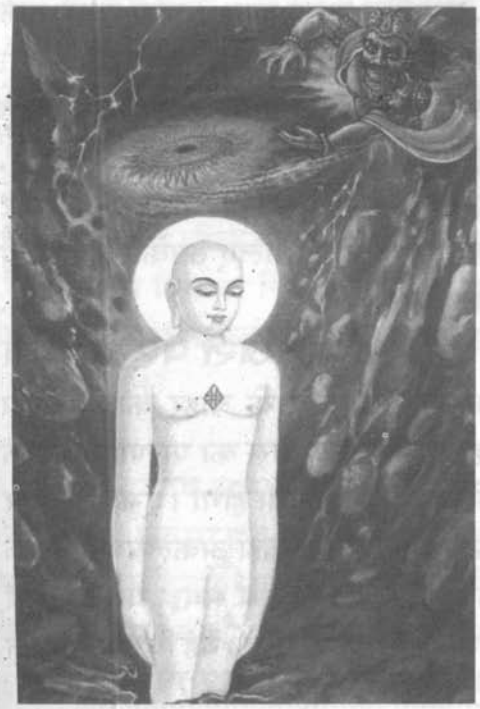

संगमदेव के द्वारा प्रभु पर छोडा गया कालचक्र।

छ महिनो से बिमार लोहारने कुश्चित बुद्धि से घन उठाया, ईन्द्रने प्रभु की भक्ति व्यकत की।

चाहिये ? उसे इसकी चिन्ता सताने लगी। वह शोचता है कि ये महासत्वशाली हैं। अनुकूल उपसर्गों से भी चलायमान नहीं हुए तो अब इन्हें ज्यों का त्यों छोड़कर देवलोक में चला जाऊँ? नहीं...नहीं... ऐसे कैसे जाया जाय ? लम्बे समय तक उपसर्ग करते हुए उसे कदाचित् क्षोभ हो जाय ऐसा विचारकर आहार-पानी बिना ग्राम-नगरों में विचरण करते प्रभु के पिछे लग गया। चला न जा सके ऐसा धूल का ढेर लगा दिया। सुभूम, सुक्षेत्र, मलय,, हस्तिशीर्ष, ओसली, तोसली आदि सन्निवेशों में ये अधमदेव जो उपसर्ग किये उसे कहते हुए भी पार न लगे ऐसा है। ऐसा कहकर ग्रन्थकार कहते हैं कि इसलिए उसका उल्लेख यहाँ नहीं किया है। अन्य शास्त्रों से स्वयं जान लेना।

संगम जैसे पर भी दया

ऐसे उपसर्गों से अचलायमान प्रभु ग्रामादि के बाहर काफी समय व्यतीतकर व्रजग्राम के गोकुल में छह महीना के उपवास का पारणा करने के लिये पधारे। अब वह उपसर्ग नहीं करेगा वह चला गया होगा। ऐसा शोचकर गोचरी के लिये पधारे तो जहँ-जहाँ प्रभु जाते हैं वहाँ-वहाँ अकल्प्यपना करके रखने लगा। प्रभु ने ज्ञान का उपयोग करके देखा तो सब समझ गये इसलिये बीच में से ही वापस आ गये। तब संगमदेव क्षोभ पा गया। वह विचारता है कि

छहमास पर्यन्त जो चलायमान नहीं हुआ उसे कैसे विचलित किया जायेगा। मेरा अब तक का प्रयत्न निरर्थक गया। मैं छह मास तक देवलोक के सुख से वंचित रहा। निरर्थक बिडंबना पाया। यह सब शोचता वह भगवान के चरणों में गिर पड़ा। वह कहने लगा कि आप प्रतिज्ञा के पारगामी है। मैं हार गया हूँ। इन्द्र महाराज ने जो कहा वह सत्य था। मैंने उस बात पर श्रद्धा नहीं की यह मेरी गलती हुई। इन सभी पश्चाताप का कोई भाव नहीं है। अब उसे डर है इन्द्रमहाराज का। अब प्रभु को यह कहना है आप जाये गोचरी हेतु मैं उपसर्ग नहीं करुंगा। प्रभु इसके बाद कहते हैं कि हे संगम। मेरी चिन्ता मत करो। मैं प्रसंगवशात् जो योग्य होता है उसे स्वयं करता हूं।

आप लोग जानते हैं न महानुभावो! संगम जब वापस लौटा तब प्रभु ने शोचा। मेरे जैसा जगदुद्धारक को पाकर भी यह भटकता रहा। उसकी दया के भाव से प्रभु की आँखों से अश्रुबिन्दु छलक पड़े। प्रभु की संगम पर कैसी दया ? अपराधकरनेवाले पर भी प्रभु की दृष्टि दया से भरी हुई थी।

अब संगम देवलोक में पहुंचता है तब इन्द्र महाराज देव-देवियों के साथ में उद्विग्न थे। उसे आते देख इन्द्र ने मुँह घूमा लिया। देवताओं से कहा कि यह सुराधम अपना अपराधी है। इसका मुँह देखने जैसा नहीं है। इसने हमारे स्वामी की कदर्थना की है। उसे भवभ्रमण का भय नहीं था, लेकिन मुझसे भी वह भय नहीं पाया। इसकी संगति से हमलोग भी पापी होंगे अतः इसे देवलोक से निकाल डालो। फिर देव-देवियों के उपहास के साथ वह पागल कुत्ते की भांति देवलोक से निकाल दिया गया। वह बाकी एक सागरोपम प्रमाण आयुष्य मेरुचूला पर पूर्ण करनेवाला है। बाद में इन्द्र ने इनकी देवांगनाओं को जाने की अनुमति दी।

देहातीत अवस्था

संगमदेव अभव्य था। वह कभी भी सुधरनेवाला नहीं था, नहीं तो उसे सुधरने का अवसर इन्द्र महाराज देते भी तो। उसका अपराधअक्षम्य था। इससे इन्द्र महाराज ने उसे देवलोक से निकाल दिया। देवलोक में उसे अब स्थान नहीं था। देव जैसे देव की भी यह दशा होती है।

हमलोग प्रभु महावीर और उपसर्गों की बात जो शुरु किये थे उसमें मुख्यतया संगम द्वारा किये गये एक रात के उपसर्ग की बात करने का निश्चय

किया था। खूब संक्षेप में प्रभु का पूर्वजीवन देखकर संगम की बात हमने यहाँ की। क्या विचार किया महानुभावों ?

छद्मस्थकाल में भी प्रभु ने कैसे उत्कट वैराग्य के बल से देहातीत अवस्था का अनुभव किया होगा ? प्रभु सुखी होंगे कि दु:खी ? सुख राग में है या वैराग्य में ? सचमुच देहातीत अवस्था आ जाय तो ? लेकिन आपका क्या विचार है ? शरीर में ही सुख मानकर बैठे रहे तो ये वैराग्य की बात किस काम में आये ? श्रीतीर्थंकरदेवों के अद्भुत चरित्र हमारे दोषों और दुर्गुणों को दबाकर जला दे ऐसा है।

देव एवं वर्तमान काल

संगम के उपसर्ग काल में दूसरे भी सुरेन्द्र एवं देव कितने उद्विग्न रहे होंगे ? उपसर्गों की झरी लगी, तब प्रभु अपने ध्यान में निश्चल रहे। संगम के जाने पर एक के बाद एक इन्द्र महाराज और देवगण उन-उन स्थलों पर आकर शाता पूछकर जाते हैं एवं केवलज्ञान में कितना देर है यह कहते जाते हैं। हम लोगों को होगा कि इतने समय तक ये सभी कहां गये थे। लेकिन अवश्यंभावी को कोई अन्यथा नहीं कर पाता। प्रभु को ये सभी सहन करना ही था। देव भी प्रमाद में आ जाय। आज अपने लोग कहते हैं न कि शासन पर इतनी-इतनी आपत्तियां है, महापुरुषों को सहन करना पड़ता हैं, देव क्या करते होंगे ? लेकिन भाग्यशालियों ये देव क्या करेंगे। ये अन्तत: तो संसारी जीव ही हैं। विषय कषाय की सामग्री के बीच जी रहे हैं। कर्म और कषाय अभी बैठा है। प्रमाद के स्थान जैसी सुख की शिला गले बाँध रखी है। निर्मल सम्यग्दर्शन होने पर भी और सम्यक्त्व को निर्मल बनाये रखने का उसमें भाव होने पर भी जबरदस्त अविरति कर्म लेकर बैठे है। वे क्या कर सकते हैं ? दूसरे क्रम में वे ज्ञानी भी हैं। ज्ञान से भरतक्षेत्र के भावी और जीवों की दुर्दशा जानते है। इससे जितनी उपेक्षा करने जैसी लगे उतनी उपेक्षा करते हैं अथवा कालक्षेप करते है या जीवों की पात्रता देखा करते हैं। जो हो वही सही। ज्ञानी ही कह सकते हैं। परन्तु इतना अवश्य ही मानना पड़ेगा कि प्रगट-अप्रगट रू प से आज भी देवों का सहयोग नहीं है ऐसा नहीं है। नहीं तो, दुर्जन एवं दुष्टों द्वारा इतने सताने पर भी रेत में नाव चलाने जैसा कठिन कार्य शासन चलाने का काम महापुरुष ही कर सकते हैं, वह चाहे किसी भी तरह पूर्ण हो ? विशेष लाभ न दिखने पर ऐसे ज्ञानी देवगण नहीं भी आये परन्तु आवश्यकता के अनुसार आज भी रक्षा आदि करते रहते हैं,

तभी आज भी जो अच्छाई है वह संभव रू प से देखी जा सकती हैं।

अब अपनी मूल बात तो प्रभु महावीरदेव विषय में है। उपसर्गों में भी संगम के उपसर्गों की बात हम जान चुके। हमलोग जानते हैं कि प्रभु को साढे

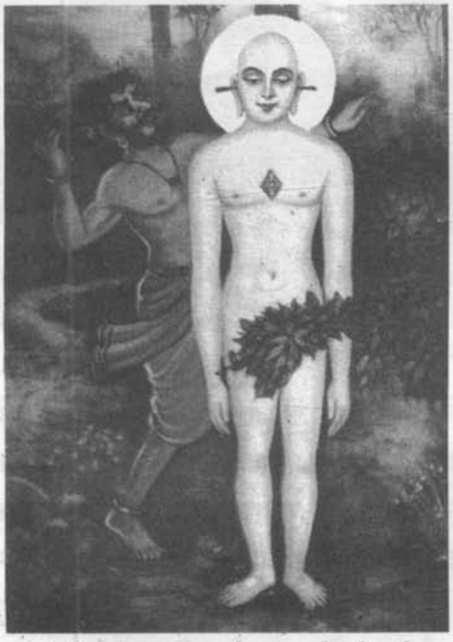

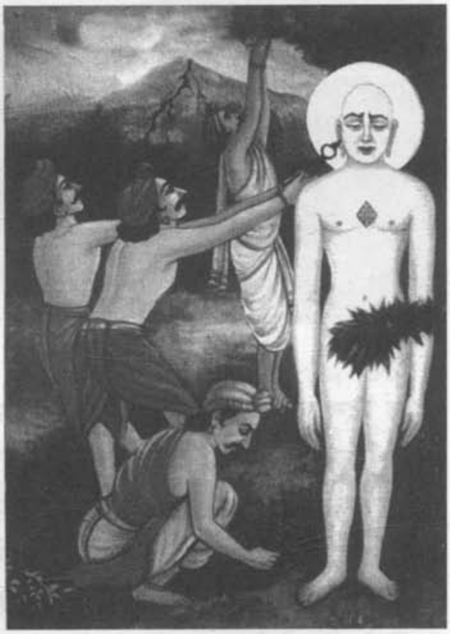

१. गोवालीया के द्वारा प्रभु के कान मे कील ठोका जाना २. खरक वैद्य द्वारा कान से कील नीकालना।

बारह वर्ष में आये हुए उपसर्गों में जघन्य-मध्यम और उत्कृष्ट भेद करने पर कठपूतना व्यंतरी का शीतोपसर्ग जघन्य में उत्कृष्ट, कालचक्र डाला गया वह

गोशाला की तेजोलेश्या।

मध्यम में उत्कृष्ट और कान में गोवालिया द्वारा डाले गये कील को निकालना जिससे मुंह से भी चीख निकल पड़ी थी, वह उत्कृष्ट में उत्कृष्ट गिना गया है।

ऐसे परीसहों उपसर्गों को शांत-प्रशांत-उपशांत होकर प्रभु ने वैशाख शुक्ल दशमी के

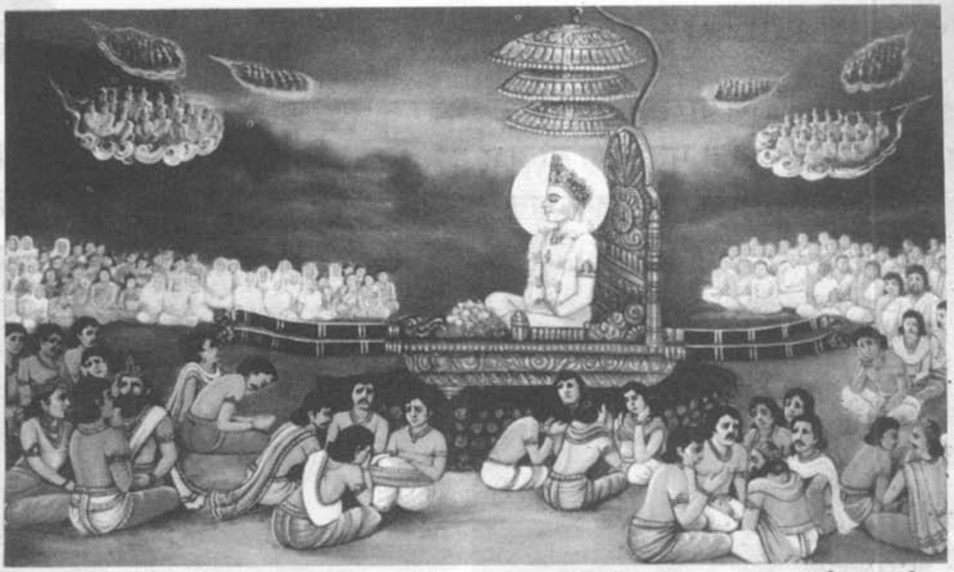

अपापापुरी में प्रभु का निर्वाण ।

शुभ दिन ऋजुवालुका नदि के किनारे श्यामाक नामक किसान के खेत में गोदोहिका आसन में आतापना लेते-लेते केवलज्ञान पाया । देवों ने समवसरण की रचना की । कल्प अनुसार क्षणभर देशना देकर गणधरपद को एवं साधु होने लायक कोई जीव न होने से प्रभु ने विहार किया । एक रात में बारह योजन विहार करके अपापापुरी में प्रभु पधारे । महसेन वन में हुए समवसरण की ओर आते देवों को देखकर आश्चर्यचकित और अपने यज्ञ की महिमा की कल्पना करनेवाले इन्द्रभूति आदि ब्राह्मणगण प्रभु को सर्वज्ञ रू प में ख्यात जानकर वाद करने आये, प्रतिबोधपाये । गणधरपद पाये । तीस वर्ष तक केवली रूप में विचरण करते प्रभुजी आज अपापापुरी नगरी में अंतिम चातुर्मास के लिये पधारकर अंतिम विशेष लाभ का हेतु जानकर चोविहार छट्ठ होने पर भी सोलह प्रहर की देशना दी । तदनन्तर देवशर्मा को प्रतिबोधदेने के बहाने गौतमस्वामी को रागबंधन तोड़ाने के लिये उन्हें भेजकर कार्तिक मास कृष्णपक्ष (आश्विन कृष्णपक्ष ३०)की रात में निर्वाण पाये । देवों ने निर्वाण महोत्सव किया । राजाओं ने भाव उद्योत जाते द्रव्य उद्योत दीपक जलाकर किया, तब से दीपावली मनायी जा रही है । प्रभु के निर्वाण का समाचार पाने से आघात पाये गौतमस्वामिजी तत्त्व का विचार करते हुए केवलज्ञान पाये । प्रभु महावीर के जीवन चरित्र की संक्षिप्त बातें हम लोग आज पूर्ण करते हैं ।

मुक्तिकिरण ग्रन्थमाला

• गुण गावे सो गुण पावे	अप्राप्य
• सागर कांठे छबछबीया (१० पुस्तिका)	४०-००
• सागर कांठे छबछबीया (१० पुस्तिका)	४०-००
• वाणी वर्षा (गुजराती)	२०-००
• करीए पाप परिहार (गुजराती)	२०-००
• मनना झरुखे (गुजराती)	४५-००
• पंचमांग श्री भगवती सूत्रम् भाग-१	३५-००
• प्रभुवीरना दस श्रावको	३५-००
• मन एक झरुखा	४५-००
• प्रभुवीर के दश श्रावक	३५-००

आगे प्रकाशित होने वाले प्रकाशनो

• गद्य चरित्राणि	(संस्कृत)
• धर्मकल्पद्रुम महाकाव्य अनुवाद	(,,)
• श्राद्ध-गुण विवरण सटीक	(,,)
• चोथा आराना पूर्वभवो	(,,)
• पाचवाँ आराना पूर्वभवो	(,,)
• पद्यचरित्राणि	(,,)
• शुक्रराज चरित्र	(,,)
• त्रिभुवन सिंहकुमार चरित्र	(,,)
• श्राद्धगुण विवरण सटीक भावानुवाद	(गुजराती)
• मनोहर मार्गानुसारिता भाग १,२	(,,)
• जैन रामायण (भाग १ थी ७)	(,,)
• अर्थ मजानो सार कथानो (गुजराती)	
• वाचना	(गुजराती)

सूरिमन्त्र समाराधन
संस्कृत-प्राकृत ग्रन्थ माला

• गौतम पृच्छा सटीक	(संस्कृत)	४५-००
• रुपसेन चरित्र	(संस्कृत)	३०-००
• अर्हदभिषेक पूजन	(संस्कृत-गुजराती)	१०-००
• शृंङ्गार वैराग्य तरंगिणी	(संस्कृत)	
• भव-भावना प्रकरण सटीक भाग-१	(प्राकृत)	१००-००
• भव-भावना प्रकरण सटीक भाग-२	(प्राकृत)	१००-००
• परिशिष्टपर्व	(संस्कृत)	५०-००
• सिद्धचक्र महात्म्य बोधक श्रीपाल चरित्र	(संस्कृत)	१०-००
• कुर्मापुत्र चरित्रम् सटीक	(संस्कृत)	
• उत्तराध्ययन कथा संग्रह		
• जीतकल्पसूत्रम् कल्प व्यवहार-निशीथसूत्राणि च	(संस्कृत)	
• जयानंद केवली चरित्र गद्य	(संस्कृत)	९०-००
• उपदेश प्रदीप (पद्य)	(संस्कृत)	१५-००
• नवतत्त्व संवेदन प्रकरण सटीक	(संस्कृत)	१५-००
• समवसरण साहित्य संग्रह	(,,)	२०-००
• पंचस्तोत्राणि	(संस्कृत)	२१-००
• रत्नपाल नृपचरित्रम्	(संस्कृत)	
• गौतम कुलकम्	(संस्कृत)	

श्री स्मृतिमंदिर प्रकाशन द्वारा प्रकाशित श्रुतसाहित्य

व्याख्यान वाचस्पति ग्रन्थमाला

• द्योध धर्मदेशनानो	अप्राप्य
• सूरिरामनी ढलती सांज (प्रथमावृत्ति)	अप्राप्य
• परमगुरुनी जीवन संध्या (गुजराती) (ढलती सांजनी द्वितीयावृत्ति)	४०-०० रु.

श्री मुक्तिमहोदय ग्रन्थमाला

• योगदष्टि सज्झाय (सार्थ) (गुजराती)	अप्राप्य
• जीवन ज्योतना अजवाला अप्राप्य	अप्राप्य
• सूरिराम सज्झाय सरिता (गुजराती)	अप्राप्य
• साधना अने साधक (गुजराती)	अप्राप्य
• उपदेश प्रदीप (पद्य) संस्कृत	१५-०० रु.
• नवतत्त्व संवेदन प्रकरण सटीक	१५-०० रु.
• समवसरण साहित्य संग्रह	२०-०० रु.
• पंचस्तोत्राणि (संस्कृत)	२१-०० रु.
• श्रमण स्वाध्याय सुवास	१६-०० रु.
• दीक्षा-वडीदीक्षा योगादि विधि	१०-०० रु.
• नामकर्म	३०-०० रु.
• सुपात्रदान महिमा विधि (गुजराती)	१०-०० रु.
• नवपद विवेचन प्रवचनो (गुजराती)	१०-०० रु.
• दान-प्रेम-रामचन्द्र वंश वाटिका	-
• प्रश्न पद्धति (सानुवाद)	२०-०० रु.
• अढार पाप स्थानक	अप्राप्य

श्री स्मृतिमंदिर प्रकाशन के सदस्यो की शुभ नामावली

मुख्य आधार स्तंभ :

- श्री दिनेशकुमार अचलदास शाह, अहमदाबाद

आधार स्तंभ :

- शाह चीमनलाल पोपटलाल पीलुचावाले (सुरत)

सदैव स्मरणीय सहयोगी :

- शाह हसमुखभाई अमृतलाल, लाडोल
- श्रेष्ठिवर्य श्री केसरीचंद मोतीचंद शाह, दमण

मोभी :

- पू.मुनिराज श्री चारित्रसुंदर विजयजी म. स्मृति.
- श्री समरथमलजी जीवाजी विनाकीया परिवार-पूना
- श्री आशाभाई सोमाभाई पटेल, सुभानपुरा-बरोडा
- प्रेमिलाबहन वसंतलाल संकलेचा, परिवार-सेलवास-वापी

सहायक :

- परमगुरु सूरित्रय संयमसुवर्णोत्सव स्मृति
- पू.सा. श्री हर्षपूर्णाश्रीजी की स्मृति निमित्ते ह. कैलासबहन
- पू.सा. श्री विरागदर्शनाश्रीजी म. की उपकार स्मृति
- श्रीमती उषाबहन किरीटकुमार गांधी-मलाड, मुंबई
- श्रीमती शोभनाबहन चंपकलाल कोठारी, मुंबई
- श्रीमती गुलाबबहन नविनचंद्र शाह, मुंबई
- शेठश्री पन्नालाल झुमखराम, मुंबई
- शेठ श्री गेनमल चुनीलालजी बाफना कोल्हापुर
- श्री संभव वाचना समिति, मुंबई
- शेठ श्री तरुणभाई पोपटलाल, लाडोल
- मीनाक्षीबहन साकेरचंद ह. कुंजेश, मुंबई
- शेठश्री जेसींगलाल चोथालाल मेपाणी, मुंबई
- श्रीमती विमलाबहन रतिलाल वोरा, मुंबई
- शेठश्री प्रविणकुमार वालचंद शेठ, नासिक
- शेठश्री बाबुलाल मंगलजी ऊंबरीवाला, मुंबई

●●●

॥ श्रमण भगवान श्री महावीर स्वामिने नमः ॥
॥ गणधरेन्द्र श्री गौतम-सुधर्मस्वामिने नमः ॥
॥ नमो नमः श्री गुरुरामचन्द्रसूरये ॥

संघ के करकमलों में एक नजराना

आज ही ग्राहक बनें और घर बैठे जिनवचनों का पान करें

आत्मजागरण की उजाला और मुक्तिपथ का प्रकाश बिखेरता हुआ

मुक्तिकिरण पाक्षिक (गुजराती)

वि. २०६१ से लाडोल के जैन-जैनेतर बन्धुओं की भावनाओं का सम्मान करते हुए प्रकाशित किया जा रहा है। जिसमें जिनवाणी के प्रसिद्ध जादूगर पू. आ. श्री विजयरामचन्द्रसूरीश्वरजी महाराजा के प्रवचन रामायण आदि, सिंहगर्जना के स्वामी पू. आ. श्री विजयमुक्तिचन्द्रसूरीश्वरजी महाराजा के सचोट चिन्तन, प्रवचन प्रभावक पू. आ. श्री विजयमुक्तिप्रभसूरीश्वरजी महाराजा के लेखांक तथा हमारे मार्गदर्शक प्रसिद्ध प्रवचनकार पू. आ. श्री विजयश्रेयांसप्रभसूरीश्वरजी महाराजा के लेख व प्रवचन, श्री भगवतीसूत्र, प्रभु वीर और उनके उपसर्ग, श्रमणोपासकों का सुरम्य जीवन, मनोहर मार्गानुसारिता आदि बहुत कुप्सरल-सुबोधशैली में प्रकाशित किए जाते हैं। आप भी हमारे इस परिवार के सदस्य बन सकते हैं। इसके लिए आज ही इसके ग्राहक बनें।

आजीवन सदस्यता शुल्क रु. ७५०/- मात्र

शुंभारंभ हो गया है।

मुक्तिकिरण (मासिक) (हिन्दी)

हिन्दीभाषी महानुभावों के लाभार्थ उनकी भावनाओं का ध्यान रखते हुए प्रकाशित करने का हमने निर्णय लिया है।

आजीवन सदस्यताशुल्क मात्र रु. ७५० /-

निवेदन : श्री स्मृतिमन्दिर प्रकाशन, अहमदाबाद

सम्पर्क

श्री स्मृतिमन्दिर प्रकाशन : श्री दिनेशभाई ए. शाह
१२, स्वस्तिक एपार्टमेन्ट, शान्तिनगर जैन देरासर के सामने,
उस्मानपुरा, अहमदाबाद

श्री हसमुखभाई ए शाह
गामदेवी, मुम्बई-९ (M) 93222 32140 (R) 022-23645084.

श्री राजेशभाई जे. शाह
बी/२५, शक्तिकृपा सोसायटी, अरुणाचल रोड, डॉ. ब्रह्मभट्ट हॉस्पीटल के पीछे,
सुभानपुरा, वडोदरा-२७. (M) 0265-2390516

श्री स्मंतिमंदिर प्रकाशन फोन : 26581521

3

श्री मुक्तिकिरण हिन्दी ग्रंथमाला

श्री स्मृतिमंदिर प्रकाशन

SMRUTIMANDIR, AHMEDABAD.